ॐ

श्री राम

वेदान्त-छन्दावली

दूसरा भाग

लेखक :

श्री स्वामी भोले बाबाजी

दूसरा भाग

सतावे न माया नहीं काल ग्रास
सुखी ही सुखी हो ! सदानन्द भासे ॥
तिहूँ ताप नाशें मिटे मैल जी का ।
करो पाठ वेदान्त-छन्दावली का ॥

मूल्य ।।) आठ आने

छठी बार

फरवरी १९५६

मुद्रक—

यादव प्रिंटिंग प्रेस,

बाजार सीताराम. देहली

निवेदन (प्रथम संस्करण से)

पीयूष पीना कौन नहीं चाहता ? पीयूष पीने से किसी की रुचि नहीं हटती। सब यह ही चाहते हैं कि पीते ही रहें यह तो कृत्रिम (नकली) अमृत की महिमा है, जिससे कुछ काल के लिए आपेक्षिक अमृत्व प्राप्त होता है, अकृत्रिम् अमृत की महिमा का तो कहना ही क्या है ? वह तो सर्वदा के लिये अजर अमर बना देता है। यह अमृत ब्रह्म है। उसका दूसरा नाम वेदान्त हैं। ब्रह्म और वेदान्त पर्यायवाचक है। यानी एक ही वस्तु के वाचक है। वाच्य-वाचक का अभेद होने से भी ब्रह्म वेदान्त ही है। उस वेदान्त रूप अमृत के पीने की सभी प्राणियों की इच्छा है, परन्तु जिस भाग्यवान के ऊपर ईश्वर की पूर्ण कृपा होती है, उसी पुण्यशाली को यह अमृत पीने को मिलता है। अन्य तो उसका नाम भी सुन नहीं पाते। कोई चार-पांच वर्ष हुए उसी अमृत का निरूपण करने वाली वेदान्त-छन्दावली का प्रकाशन हुआ है, जिसको आप सभी वेदान्त प्रेमियों ने मान दिया है। बहुत-से प्रेमियों को निवेदक ने प्रतिदिन प्रातःकाल में स्नान करके गंगा किनारे अध्ययन करते हुए देखा है। उसकी भव्यता तो उसकी स्वींकृति से ही प्रसिद्ध है। चार-चार पांच-पांच हजारों के तीन संस्करण तो गीता प्रेस से निकल चुके हैं। जगत पुस्तक भण्डार देहली से भी कई संस्करण निकल चुके हैं। फिर भी बहुत से प्रेमियों की इच्छा थी कि उसका दूसरा भाग भी निकले तो अच्छा हो। उनकी इच्छानुसार यह दूसरा भाग जगत पुस्तक भंडार देहली से निकाला जा रहा हैं। इसकी भाषा पहिले से सरल और रुचिकर है। इसमें शंका समाधान भी दिखाया गया है आशा है, यह दूसरा भाग बहुत थोड़ी हिन्दी जानने वाले भाई बहनों का भी हितकर होगा और प्रेम से सब इसका पान करके नर-जन्म सफल करेंगे। इति शुभम्।

—सकल चराचरानुचर, "भोला"।

पद्य-सूची

❀ ओ३म् ❀

श्री परमात्मने नमः

वेदान्त-छन्दावली

दूसरा भाग

—:०:—

मङ्गलाचरणम्

यदनन्तं मनःपथ्यं तथ्यमाद्यन्तमध्यगम् ।
समस्त साधुभिर्जुष्टं तमात्मानमुपास्महे ॥ १ ॥
आदौ मध्ये तथान्ते च चिराय परमोचितम् ।
यच्चारू मधुरं पथ्यं तमात्मानमुपास्महे ॥ २ ॥
यद्बुद्धेः परमालोकमाद्यं यदमृतं परम् ।
यदनुत्तम सौभाग्यं तमात्मानमुपास्महे ॥ ३ ॥
अनेकत्त्व पिशाचेन चित्तवैधुर्य्यदायिना ।
यददृष्टमशुद्धेन तमात्मानमुपास्महे ॥ ४ ॥
यदुदर्कहितं सत्यमनपायि गतभ्रमम् ।
दुरीहित दृशोन्मुक्तं तमात्मानमुपास्महे ॥ ५ ॥
जाग्रत् स्वप्नसुषुप्तेषु तुर्य्यातुर्य्यातिगे पदे ।
समं सदैव सर्वत्र चिदात्मानमुपास्महे ॥ ६ ॥
प्रशान्तसर्वसंकल्पं विगताखिलकौतुकम् ।
वर्जिताशेषसंरम्भं चिदात्मानमुपास्महे ॥ ७ ॥

सर्वसंकल्पफलदं सर्वतेजःप्रकाशकम् ।
सर्वोपादेयसीमान्तं चिदात्मानमुपास्महे ॥ ८ ॥
निष्कौतुकं निरारम्भं निरीहं सर्वमेव च ।
निरंशं निरहङ्कारं चिदात्मानमुपास्महे ॥ ९ ॥
सर्वावयवविश्रान्तं समस्तावयवातिगम्
अनारतं कचद्रूपं चिदात्मानमुपास्महे ॥ १० ॥
घटे पटे तटे कूपे स्पन्दमानं सदातनौ ।
जाग्रत्यपि सुषुप्तस्थं चिदात्मानमुपास्महे ॥ ११ ॥
उष्णांमग्नौ हिमे शीतं मृष्टमन्ने शितं क्षुरे ।
कृष्णध्वांते सितंचन्द्रे चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ १२ ॥
आलोकं बहिरन्तस्थं स्थितं च स्वात्मवस्तुनि ।
अदूरमपि दूरस्थं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ १३ ॥
माधुर्य्यादिषु माधुर्य्यं तीक्ष्णादिषु च तीक्ष्णताम् ।
गतं पदार्थजातेषु चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ १४ ॥
सर्वस्यातःस्थितं सर्वमप्यपारैकदर्पणम् ।
अपर्य्यन्तचिदारम्भं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ १५ ॥
त्रैलोक्य देहमुक्तानां तन्तुमुन्नतमानतम् ।
प्रचारसंकोचकरं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ १६ ॥

लीनमन्तर्बहिःस्वाप्तान् क्रोडीकृत्यजगत्खगान् ।
चित्रं ब्रह्मजालमिव चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ १७ ॥
सर्वं यत्रेदमस्त्येव नास्त्येव च मनागपि ।
सदसद्रूपमेकं तं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ १८ ॥
परम प्रत्ययं पूर्णमास्पदं सर्वसम्पदाम् ।
सर्वाकारविहारस्थं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ १९ ॥
स्नेहाधारमथोऽशान्तं जड़वाताहति भ्रमैः ।
युक्तं मुक्तं च चिद्दीपं वहिरन्तर्भजाम्यहम् ॥ २० ॥
हृत्सरः पद्मिनी कन्दंतन्तु सर्वाङ्ग सुन्दरम् ।
[illegible]नता जीवनोपायं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ २१ ॥
अक्षीरार्णव संभूतमशशांकमुपस्थितम् ।
अहार्यममृतं सत्यं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ २२ ॥
शब्दरूपरसस्पर्शगन्धैराभासमागतम् ।
तैरेव रहितं शान्तं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ २३ ॥
आकाशकोशविशदं सर्व लोकस्य रञ्जनम् ।
न रञ्जनं नचाकाशं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ २४ ॥
महा महिम्ना सहितं रहितं सर्व भूमिभिः ।
कर्तृत्वे वाप्यकर्तारं चिदात्मानं भजाम्यहम् ॥ २५ ॥

होती सफलता है वहीं !

(१)

मित्रो ! करो जो कार्य, सो सोचे विना मत कीजिये !
आरंभ पीछे कीजिये, पहिले समझ सो लीजिये !!
सोचे बिना, समझे विना, होती सफलता है नहीं !
होता जहां सुविचार है, होती सफलता है वहीं !!

(२)

चिन्ता न कीजे चित्त में, मन में न शंका लाइये !
निःशंक होकर कार्य कीजे, भय न किंचित् खाइये !!
जो मूढ़ चिन्ताग्रस्त हो सो, कार्य कर सकता नहीं !
चिन्ता जहां होती नहीं, होती सफलता है वहीं !!

(४

जब तक न पूरा कार्य हो, उत्साह से करते रहो !
पीछे न हटिये एक तिल, आगे सदा बढ़ते रहो !!
उत्साह बिनु जो कार्य हो, पूरा कभी होता नहीं !
उत्साह होता है जहां, होती सफलता है वहीं !!

(४)

आपत्तियां सब झेलिये, मत कष्ट से घबराइये !
हो मृत्यु का भी सामना, हटिये नहीं मर जाइये !!
कायर भगे रणक्षेत्र से, रणधीर हटता है नहीं !
होती जहां है वीरता, होती सफलता है वहीं !!

(५)

उपदेश लीजे प्राज्ञ से, मत अन्य को सिखलाइये !
व्याख्यान ही मत दीजिये, करि कार्य कुछ दिखलाइये !!
बकवाद करने मात्र से, कुछ कार्य सरता है नहीं !
जैसा कहै वैसा करे, होती सफलता है वहीं !!

(६)

तनुमें महा-आसक्ति हो, मन में हजारों कामना !
लोलुप सदा हो भोग में, चाहे जगत् में नामना !!
केवल उठाता बोझ ही, तो हाथ कुछ आता नहीं !
होती जहां निष्कामता, होती सफलता है वहीं !!

(७)

आसक्ति तनमें हो नहीं, सब इन्द्रियां स्वाधीन हों !
ना भोग की हो लालसा, मन ब्रह्म में तल्लीन हो !!
होता विरागी नर सुखी, रागी सुखी होता नहीं !
होता जहां वैराग्य है, होती सफलता है वहीं !!

(८)

गुरु-शास्त्र से जब ज्ञान हो, पीछे उसी का ध्यान हो !
हो ध्यान से वैराग्य पर, तब तत्त्व सम्यक् ज्ञान हो !!
भोला ! बिना गुरु-शास्त्र, सम्यक् ज्ञान नर पाता नहीं !
होते जहां गुरु-शास्त्र हैं, होती सफलता है वहीं !!

नमन ।

(१)

संसार में है दीखता, फिर भी नहीं संसार में ।
व्यवहार करता है सभी, फंसता नहीं व्यवहार में ॥
है देहधारी दीखता पर, वस्तुतः है रहित तन ।
उस प्राज्ञ जीवन्मुक्त को, करता नमन हूं फिर नमन ॥

(२)

सुनता हुआ सुनता नहीं, ना बोलता भी बोलता ।
नहिं देखता भी देखता, नहिं डोलता भी डोलता ॥
चलता हुआ सा दीखता, फिर भी नहीं करता गमन ।
उस प्राज्ञ जीवन्मुक्त को, करता नमन हूं फिर नमन ॥

(३)

नहिं जागता भी जागता, सोता हुआ सोता नहीं ।
हंसता हुआ हंसता नहीं, रोता हुआ रोता नहीं ॥
त्यागी महा त्यागे नहीं, लेता न कुछ करता ग्रहण ।
उस प्राज्ञ जीवन्मुक्त को, करता नमन हूँ फिर नमन ॥

(४)

अभ्यास करता योग का, फिर भी न करता योग है ।
भोक्ता सभी कुछ भोगता, फिर भी न करता भोग है ।
विक्षिप्तसा है दीखता, पर है सदा एकाग्र मन ।
उस प्राज्ञ जीवन्मुक्त को, करता नमन हूं फिर नमन ॥

(५)

संलग्न रहता सांख्य में, नहीं सांख्य से कुछ काम है।
अनुरक्त अपने आप में, निष्काम आत्माराम है॥
मौनी महा, ध्यानी महा, नहीं ध्यान करता नहिं मनन।
उस प्राज्ञ जीवन्मुक्त को, करता नमन हूं फिर नमन!!

(६)

साम्राज्य भोगे वाह वा, भिक्षा करे तो वाह वा।
हाथी चढ़े तो वाह वा, पैरों रहे तो वाह वा॥
चाहे रहे बस्ती नगर चाहे बसे सुनसान वन।
उस प्राज्ञ जीवन्मुक्त को, करता नमन हूं फिर नमन!!

(७)

बहु युक्तियां है जानता, जाने घने दृष्टान्त है।
पर-पक्ष खंडन में कुशल, मंडन करे सिद्धान्त है॥
है सिद्ध योगी पूर्ण फिर भी, अज्ञ-बालक सा चलन।
उस प्राज्ञ जीवन्मुक्त को, करता नमन हूं फिर नमन!!

(८)

शिव शिव कभी रटता रहे, जपता कभी हरि नाम है।
उच्चार करता ॐ, या जप से रहे उपराम है॥
करता रहे है चिंतवन, फिर भी न करता चिंतवन।
उस प्राज्ञ जीवन्मुक्त को, भोला नमन कर फिर नमन!!

अमृत वर्षा।

(१)

देखा बरफ़ भी वर्षता, जल वर्षता देखा घना।
ओला तथा पाला कभी, रज वर्षता देखा सुना॥
वर्षा भिगोती, मलिन करती, हाथ पग ठिठरावती।
देखी विलक्षण आज वर्षा, मोद मन उपजावती॥

(२)

आकाश से बिनु मेघ ही, क्या इन्द्र वर्षा कर रहा?
क्या सिंधु से निकला सुधा, सो कुंभ में से झड़ रहा॥
इच्छा हुई क्या इन्द्र की, संतृप्त सबको कीजिये!
तिहुं ताप से जो तप रहे, शीतल उन्हें कर दीजिये!!

(३)

बड़भाग्य है नर-लोक का, अमृत की वर्षा गिर रही।
ब्रह्मादि को दुर्लभ्य जो, मर को अमर सो कर रही॥
नर भाग्यशाली पी रहे हैं, स्नान भी हैं कर रहे।
मन मैल हँस हँस धो रहे, भव-सिंधु से हैं तर रहे॥

(४)

अद्भुत अमृत पावन-परम, पापी इसे नहिं पासकें।
भवरोग के रोगी महा, नहिं पास तक भी आ सकें॥
भव-ज्वर चढ़ा जिन शठन पर, कड़वा अमृत लगता उन्हें।
नहिं छींट तक भी ले सकें, पीना रुचे कैसे तिन्हें?

(५)

लेना चाहें अमृत कई, करने ग्रहण जब जांय हैं।
नहिं पात्र रखते पास वे, रीते वहाँ से आंय हैं ॥
है आश उनकी व्यर्थ ही, नहिं पास जिनके पात्र ही
दुर्भाग्य पाकर, रत्न आकर, भी सहें दुख मात्र ही ॥

(६)

आते कई हैं पात्र लेकर, पात्र में पर छेद है।
भरते हैं अमृत पात्र में, "जाता निकल सब" खेद है ॥
जाने कई नहिं अमृत को, माने अमृत दुर्गन्ध को।
पीते उसे हैं प्रेम से, धिक्कार ऐसे अन्ध को ॥

(७)

हैं धन्य वेही धीर नर, जो हैं अमृत पहिचानते।
न्हाते उसी में नित्य ही, पीवें उसे सुख मानते ॥
पीकर अमृत होते अमर, ब्रह्माण्ड में भर जावते।
पी ज्ञान वर्षा अमृत सादर, विष्णु पदवी पावते ॥

(८)

वेदान्त की चर्चा है अमृत, गुप्त यह चिरकाल से।
भोला ! लुटायी जा रही, बाज़ार में कुछ साल से ॥
जो भाग्यशाली पान करते, कृत्य कृत हो जांय हैं।
स्वराज्य निश्चल पायके, सुख नींद में सो जांय हैं ॥

मुसाफिर !

(१)

आया जहां से सैर करने, हे मुसाफिर ! तू यहां।
था सैर करके लौट जाना, युक्त तुझ को फिर वहां॥
तू सैर करना भूल कर निज, घर बना कर टिक गया।
कर याद अपने देश की, परदेश में क्यों रुक गया ?

(२)

अंजान, कुलटा नारि से, सम्बन्ध तूने कर लिया।
बच्चे हुऐ, कच्चे हुऐ, जंजाल में है फंस गया॥
चें चें करें, में में करें, यह हंस रहा, वह रो रहा,।
हे रे मुसाफिर ! चेत जा, गू मूंत क्यों है धो रहा ?

(३)

भंडार तेरा सत्य है, व्यवहार तेरा सत्य है।
चैतन्य में करता रमण, तू मुक्त शाश्वत नित्य है॥
सुख रूप है, निश्चिन्त है, क्यों हो रहा तू दीन है ?
भाई मुसाफिर ! शोक तज, तू सर्व चिन्ता हीन है॥

(४)

संकल्प तेरा सिद्ध तू, वरदान दाता सर्व का।
अज्ञान से अपने बंधा, चाकर बना है खर्व का॥
नहिं याद करता आपको, दर दर भटकता फिर रहा।
आजा मुसाफिर ! होश में, क्यों हाय हा है कर रहा ?

(५)

फंस कर अविद्या जाल में, आनन्द अपना खो दिया।
न्हाकर जगत मल सिन्धु में, रंग रूप सुन्दर धो दिया॥
निःशोक है तू सर्वदा, क्यों मोहवश पागल भया ?
तजदे मुसाफिर ! नींद, जग, अब भी न तेरा कुछ गया॥

(६)

जिनको सहृद् तू जानता, सब शत्रु हैं सच मान रे।
जीते मरे भी कष्ट दें, हितकर न उनको जान रे॥
दे त्याग ममता सर्व की, सच झूंठ को पहिचान रे।
हे रे मुसाफिर ! चेत, हितकर वाक्य पर दे ध्यान रे॥

(७)

आया यहां तू सैर करने, मार्ग अपना भूल कर।
खाता फिरे है ठोकरें, निज भूल अब निर्मूल कर॥
कर याद अपने धाम की, तू मत भटक अब दर बदर।
श्रुति संत कहते हैं मुसाफिर ! मान सच विश्वास कर॥

(८)

सद्गुरू बचन शिर धार कर, व्यापार जग का छोड़ दे।
जा लौट अपने धाम में, नाता यहां का तोड़ दे॥
सद्गुरु बचन जो मानता, निश्चय अचल पद पाय है।
भोले मुसाफिर ! हो सुखी, क्यों कष्ट व्यर्थ उठाय है॥

महा शंका।

शंका—

(१)

गुरू शास्त्र सब ही कह रहे, अद्वैत केवल तत्त्व है।
यह विश्व वन्ध्या पुत्र है, तिहूं काल में निस्तत्त्व है॥
शंका महा यह होय है, मस्तिष्क चक्कर खाय है।
यह भिन्नता कैसे हुई, नहिं कुछ समझ में आय है॥

समाधान—

(२)

अज्ञान शंका रूप है, अज्ञान से संसार है।
संसार में तू फंस रहा, जाने न सारासार है॥
ज्यों दिन सभी को दीखता, उल्लू अन्धेरा जानता।
त्यों द्वैत में जो है फंसा, अद्वैत नहीं पहिचानता॥

(३)

अज्ञान से निकले जभी, अज्ञान जाना जाय तब।
अज्ञान ही रहवे नहीं, अज्ञान जाना जाय जब॥
नहिं द्वैत में रहते हुये, अद्वैत जाना जा सके।
कैसे हुआ है द्वैत यह भी, नहिं समझ में आ सके॥

(४)

अन्तःकरण निर्मल बना, गुरू वाक्य पर विश्वास कर।
गुरू वाक्य के अनुसार चल, वैराग्य कर अभ्यास कर॥
मन शुद्ध ज्यों ज्यों होयगा, अज्ञान हटता जायगा।
अज्ञान जब हट जायगा, अद्वैत में डट जायगा॥

(५)

जैसे उजाले मांहि भी, कल्पा अंधेरा जा सके।
अद्वैत के भी मांहि त्योंहीं, द्वैत कल्पा जा सके॥
यह कल्पना अज्ञान है, माया यही कहलाय है।
जब एक के दो कर लिये, तब भिन्नता हो जाय है॥

(६)

जो कल्पना में है पड़ा, सो देखता है भिन्नता।
है वस्तुतः अद्वैत ही, किंचित् नहीं है द्वैतता॥
नहिं द्वैत मेरी दृष्टी में, अद्वैत केवल भासता।
जो भासता ही है नहीं, उसका मुझे फिर क्या पता?

(७)

फोटो ग्राफर केमरे से, चित्र लाखों खींचता।
बन जांय हैं फोटो घनी, कैसे बनी तू ही बता॥
सच्चा उजाला नित्य है, उसका न होना जान तम।
सब मूर्तियां इन से बनीं, जब से मिले दोनों विषम॥

(८)

ज्यों स्वप्न जग की भिन्नता, नहिं नींद से है अन्य कुछ।
त्यों ही जगत की भिन्नता, अज्ञान से नहिं भिन्न कुछ॥
अद्वैत ही अद्वैत है, भोला! जिसे अनुभव हुआ।
संसार से सो तर गया, कैवल्य पद पर चढ़ गया॥

धन्य श्री गुरु देव !

(१)

अज्ञान दारू के नशे में, भूल 'मैं' निज को गया।
आसक्त हो कर भोग में, मरता रहा, जन्मा किया ॥
करता स्मरण था दुःख का, होता बहुत ही था दुखी।
हैं धन्य श्री गुरुदेव जी, उपदेश दे कीन्हा सुखी ॥

(२)

हीरा समझ कर कांच को, लेने उसे दौड़ा किया।
आशा घनी करता हुआ, भवजाल में था फंस गया।
ज्यों २ अधिक आशा करूँ त्यों २ अधिक होता दुखी।
हैं धन्य श्री गुरुदेव जी, उपदेश दे कीन्हा सुखी ॥

(३)

सच्चा जगत था जानता, पावन अपावन मानता ।
'सम्बन्ध सारे हैं मृषा' फिर भी उन्हें सच जानता ॥
सच मान कर होता दुखी, चिल्लाय था घबराय था।
हैं धन्य श्री गुरुदेव जिन, बतला दिया जो हेय था ॥

(४)

'मैं' सर्व में है भर रहा 'तू' का कहीं नहीं है पता ।
कहते सभी 'मैं' आप को, कोई नहीं 'तू' मानता ॥
तू था नहीं ! फिर भी मुझे, तू दुःख देता था महा।
हैं धन्य श्री गुरुदेव जी, अब दुःख सब जाता रहा ॥

(५)

निरपेक्ष 'मैं' ही सत्य है, सापेक्ष 'मैं' मिथ्या महा।
सापेक्ष मैं' सच मान कर, 'तू' 'तू' वृथा था कर रहा॥
'तू' 'तू' सदा करता हुआ, 'मैं' श्वान सम भटका किया।
है धन्य श्री गुरुदेव जी, अब स्वस्थ सत् हो 'मैं' गया॥

(६)

था वस्त्र केवल सूत ही, नहीं सूत से कुछ अन्य था।
नहिं भेद दोनों में जरा, ताना न था बाना न था॥
तो भी पड़ा मैं मोह में था, हाय कितनी मूर्खता।
हैं धन्य श्री गुरुदेव जी, अब जानली मैं सत्यता॥

(७)

मनके सिवा संसार कोई, सिद्ध कर सकता नहीं।
मनके सिवा संसार की, नहीं सत्यता कुछ भी कहीं॥
संसार तब है ही नहीं, नहीं जन्म है, नहीं है मरण।
हैं धन्य श्री गुरुदेव जी, पातक हरण, तारण, तरण॥

(८

नहिं एक होय अनेक कारण, दुःख की है भिन्नता।
माया यही काया यही, करती यही है खिन्नता॥
नहिं भेद भोला! है यहां, अद्वैत है, एकत्व है।
हैं धन्य श्री गुरुदेव जिन, दिखला दिया निज तत्त्व है॥

अखंड आत्मा ।

(१)

सबका प्रकाशक आत्म सो, कैसे किसी से ढक सके ?
माया अविद्या रूपिणी क्या, आवरण कुछ कर सकै ॥
पीड़ा ग्रहादिक दें उसे, ऐसा कभी संभव नहीं ।
वह तो अखण्डानन्द है, सत् चित्, स्वरूप सदैव ही ॥

(२)

क्या बन सकेगा अन्य कुछ, तज आत्म अपने रूप को ।
भ्रम भी हटा क्या पायगा, उसके विशुद्ध स्वरूप को ॥
सम्भव नहीं है वह स्वयं, अज्ञान या तम मात्र ही ।
वह तो अखण्डानन्द है, सत् चित्, स्वरूप सदैव ही ॥

(३)

'अज्ञान का ह स्थान कुछ, कैसे बनी यह भावना ।
'है भूल में भी भूल की, क्या कुछ कभी सम्भावना ॥
दो चेतना प्रियता जनक्, फिर भूल यह सम्भव नहीं ।
वह तो अखण्डानंद है, सत् चित्, स्वरूप सदैव ही ॥

(४)

है रात औ दिन फिर कहां, सुख है कहां, दुख है कहां ?
मैं और मेरा है कहां, तू और तेरा फिर कहां ?
यह कल्पना ही भेद है, है सत्य तो जो है वही ।
वह तो अखण्डानन्द है, सत् चित् स्वरूप सदैव ही ॥

(५)

आया न काया है कहीं, खंडित कभी न अखंड है।
जाने न जाने वा उसे, कुछ हानि लाभ उसे न है।।
है हानि उसकी विश्व में, जो मानता है हानि ही।
वह तो अखंडानन्द है, सत् चित्, स्वरूप सदैव ही।।

(६)

जादू हमारे दृष्टि में, वह है तिलस्मी 'मैं' नहीं।
नटवर न है, लीला कहीं, उसकी जगत लीला नहीं।।
लीला ग्रसित है जो स्वयं, लीला उसे सर्वत्र ही।
वह तो अखंडानन्द है, सत् चित्, स्वरूप सदैव ही।।

(७)

करतूत भय के भूत की, 'भय में वसी' कव भूत में।
निर्भय न फंसता है कभी, उस भूत वा करतूत में।।
निर्वल वना वन्धन मिला, चित् तत्व है निर्बन्ध ही।
वह तो अखंडानन्द है, सत् चित्, स्वरूप सदैव ही।।

(८)

उन्माद जिसका मिट गया, भोला! उसे ही चेत है।
सत् शास्त्र, गुरु उपदेश ही, मद निर्गमन का हेतु है।।
है स्वानुभव वतला रहा, 'जो था सदा' है अव वही।
वह तो अखंडानन्द है, सत् चित् स्वरूप सदैव ही।

मैं और मेरा

(१)

खेंची लकीर जहां कहीं, 'मैं' मध्य उसके धर दिया।
'मैं' देव का स्थापन किया, अभिषेक उसका कर दिया ॥
'मैं' की प्रतिष्ठा हो गई, त्यों ही अचल वह होगया।
आये पदारथ पास जो, मेरा बना उन को लिया ॥

(२)

'मैं और मेरे के सिवा, जो दृष्टि के गोचर हुए।
तू और तेरा मान कर, 'मैं' से पृथक् वे कर लिये ॥
झूंठी लकीरें थीं सभी, था भेद उनमें कुछ नहीं।
'मैं' और मेरा कर लिया, तू और तेरा भी कहीं ॥

(३)

जो ध्यान देकर देखिये, संसार मात्र लकीर है।
संसार मात्र लकीर पर, संसार सर्व फकीर है ॥
संसार का है ना पता, फिर भी बना डाला पता।
अनुभव करें सब दुःख का, है दुःख बिलकुल लापता ॥

(४)

धन धामकी की कल्पना, अरु सीख लीन्हा धर्म भी।
करली खड़ी बहु कामना, लाखों बनाये कर्म भी।
केवल नहीं की कल्पनां, दृढ़ ठोस पक्के कर लिये
हो जांय झूंठे नींद में, जागे जहां फिर सच हुए

(५)

कोई कहें ईश्वर रचा जग, अन्य कहते कर्म ने।
कोई कहे माया रची, कोई कहें संकल्प ने॥
सब कह रहे हैं ठीक ही, फिर भी मुझे रुचता नहीं।
'मैं और मेरे' के सिवा, देखा न जगकर्ता कहीं॥

(६)

नहिं तत्त्व के अज्ञान से, कुछ तत्त्व भग जाता कहीं।
बनता बनाने से नहीं, बिगड़े बिगाड़े से नहीं॥
जो है वही है नित्य ही, जो है नहीं, सो है नहीं।
'मैं और मेरा' दुःख है, है तत्त्व तो सुख रूप ही॥

(७)

'मैं' बनत ही मेरा बना, बनना बिगड़ना छोड़ दो।
नहिं धूल खाकर तृप्ति हो, अब धूल खाना छोड़ दो॥
क्यों धूल के पकवान खाकर, तृप्त होना चाहते?
क्यों धूल खाने के लिये, तुम धूल ढोना चाहते?

(८)

'मैं और मेरा दुःखमय' तज मित्र दोनों दीजिये।
सर्वत्र ही भर जाइये, स्वाराज्य अक्षय लीजिये॥
क्षुद्रत्व भोला! जाय हट, आत्मत्व त्यों ही जाय छट।
पूर्णत्व अनुभव होय झट, पूर्णत्व में ही जाय डट॥

विषयासक्त बुद्धि

(१)

ब्याही हुई लड़की प्रथम, सुसराल भेजी जाय है।
माता पिता को छोड़ कर, जाना उसे नहिं भाय है॥
सकुचाय है, घबराय है, रोवे तथा चिल्लाय है।
त्यों बुद्धि विषयासक्त भी, स्व स्वरूप में नहीं जाय है॥

(२)

बालक युवक विद्या पढ़न, जब पाठशाला जावता।
परतंत्रता में बैठने से, दुःख मन में पावता॥
है खेलना रुचता उसे, पढ़ना जरा न सुहाय है।
त्यों बुद्धि विषयासक्त तेरी, आत्म से घबराय है॥

(३)

ज्यों भूप के दरबार में, सामान्य नर जब जाय है।
अनुचित न कुछ हो जाय, ऐसा सोच कर घबराय है॥
निःशंक जा सकता नहीं, शंका अनेक उठाय है।
त्यों बुद्धि विषयासक्त तेरी, आत्म से भय खाय है॥

(४)

ज्यों चोर लेकर माल, चोरी का छिपा कर भागता।
पीछे न आती दौड़ हो, इस सोच से भय लागता॥
आगे कभी पीछे चले, सीधा चला नहिं जाय है।
त्यों बुद्धि विषयासक्त तेरी, आत्म से घबराय है॥

(५)

व्यभिचार हित पर दार के, घर, ज़ार कोई जाय है।
पति नारि का घर में अचानक, बाह्य से आजाय है॥
तब ज़ार के मन मांहि जैसे, क्षोभ भारी आय है।
त्यों बुद्धि विषयासक्त तेरी, आत्म से भय खाय है॥

(६)

कोई मुसाफिर जा रहा है, बाल बच्चे साथ में।
जोखों बंधी है गांठ में, हथियार नहिं है हाथ में॥
डाकू उसे लें घेर तब, ज्यों दहल मन में खाय है।
त्यों बुद्धि विषयासक्त तेरी, आत्म से दहलाय है॥

(७)

पापी अधर्मी जन्म शत्, नहिं आत्म दर्शन कर सके।
सुख शान्ति भी पावे नहीं, संसार से नहिं तर सके॥
जब बुद्धि निर्मल होय है, तब आत्म रस चख पाय है।
आत्मानुरागी तज विषय, संसार से तर जाय है॥

(८)

जब बुद्धि जाती है बिगड़, भोला! बिगड़ सब जाय है।
जब बुद्धि होती शुद्ध है, तब शुद्ध सब हो जाय है॥
होवे विकार निवृत्त सब, तब बुद्धि होवे शुद्धतम।
तब बोध होय स्वरूप का, पद पाय सच्चित् शान्त सम॥

शिष्यत्व

(१)

गुरु सहज ही सब बन सकें, पर कठिन बनना शिष्य है
नहिं झूंठ मेरा है कथन, यह, किन्तु सम्यक् सत्य है
उपदेश लेने के लिये, कोई नहीं तैयार है
उपदेश देने के लिये, हर एक ही हुशियार है

(२)

छोटे बड़े पण्डित अपढ़, बैठे सभी हैं गुरु बने
उपदेश देने के लिये, कोई नहीं करता मने
उपदेश सब ही कर रहे, पर यह अचम्भा आय है
उपदेश लेने के लिये, कोई न उन तक जाय है

(३)

सागर नदी सिखला रहे, पशु पत्ति दे शित्ता रहे
उपदेश पांचों भूत दें, गिरि, तरु लता समझा रहे
कोई नहीं उपदेश ले, नहिं शिष्य कोई दीखता
जो शिष्य सच्चा होय है, सब कुछ सभी से सीखता

(४)

जो शिष्य तो बनता नहीं, गुरु मात्र बनना चाहता
वह कुछ नहीं है सीखता, सन्मार्ग से गिर जावता
जो शिष्य शित्ता लेय है, सो सीख सब कुछ जावता
गुरु होय गुरुओं का तथा, जग में बड़ाई पावता

(५)

है शिष्य लक्षण कठिन, कोई शिष्य विरला हो सके।
जो भाव अपना मेट दे, सो शिष्य सच्चा हो सके॥
सच्चा वही है शिष्य, जो सब कामनायें छोड़ता
वैराग्य पूरा धारता, गुरु वाक्य में मन जोड़ता॥

(६)

निज बुद्धि का अभिमान तज, गुरु वाक्य सच्चे जानता।
मन, कर्म वाचा भक्त गुरु का, ईश गुरु को मानता॥
गुरु वाक्य माहीं चित्त दे, गुरु चित्त ही बन जावता।
अर्पण करे सर्वस्व अपना, शिष्य सो कहलावता॥

(७)

शिष्यत्व लक्षण युक्त हो, उपदेश सोई पाय है।
उपदेश गुरु का पाय के, परिपूर्ण निश्चय लाय है॥
निश्चय जहां पक्का, हुआ तहँ मर्म सब खुल जाय है।
तत्त्वज्ञ होता शिष्य तो, गुरु आप ही बन जाय है॥

(८)

ब्रह्मज्ञ ने जो भाग्यशाली, शिष्य भोला! कर लिया।
प्राप्तव्य उसने पा लिया, सब कर लिया, सब धर लिया॥
शिष्यत्व चाबी योग की, शिष्यत्व साधन ज्ञान का।
कारण वही है क्षेम का, दाता वही निर्वाणका॥

उल्टी गंगा

(१)

विश्रान्ति देवी पर चतुर नर, जो हुए आसक्त हैं
करते उसी का संग, उसके रंग में ही रक्त हैं।
एकान्त में करते रमण, क्षण भर न होंय वियुक्त हैं
कामी तथा रागी महा, वे होंय भव से मुक्त हैं।

(२)

श्री विष्णु ज्यों नरसिंह बन, दी चीर छाती दैत्य की।
निज क्रोध कूँ कीन्हा प्रकट, रक्षा करी निज भक्त की॥
त्यों क्रोध बल से चीर छाती, देय दानव मोह की।
सो होय योगी मुक्त यह, महिमा महा है क्रोध की।

(३)

मन कांचमणि अति तुच्छ, 'देता दुःख' नहिं कुछ कामका।
है ज्ञान चिन्तामणि सुखद, बहु काम का, बहु दाम का॥
ऐसा समझ जो लोभ से, मन कांचमणि दे देय है।
ले ज्ञान चिन्तामणि तुरत ही, होय उसका श्रेय है॥

(४)

चैतन्य के अति मोह से, जो नर हुए उन्मत्त हैं।
नहिं देह नांही भोग-ना, धन मांहि देते चित्त हैं॥
क्या राज्य क्या ऐश्वर्य का, किंचित् न जिनको ज्ञान है।
हो जाय ऐसे मोह से, उनका तुरत कल्याण है॥

(५)

मुझ से परम कुछ भी नहीं, सब से परम मैं आप हूँ।
हूँ शुद्ध नित्य प्रबुद्ध हूँ, निष्पाप हूँ, निष्ताप हूँ॥
खोटा सभी संसार है, मैं एक केवल हूँ खरा।
मद्युक्त ऐसा मुक्त हो, इसमें नहीं संशय जरा॥

(६)

जो आत्मदर्शी प्राज्ञनर, उत्कर्ष से निज तत्त्व के।
संसार की मिथ्या दमक, रंचक सहन नहिं कर सके॥
ऐसा जिसे मत्सर हुआ, तत्त्वज्ञ सो हो जाय है।
मत्सर रहित सौ वर्ष तक, समता न उसकी पाय है॥

(७)

कामादि सारे भाव हैं, इस जीव के सुख के लिये।
सर्वज्ञ ईश्वर क्यों रचे, कुछ दुःख देने के लिये?
सत्पुरुष पद सेवा विना, नहिं मर्म कोई पासके?
सेवा करे जो संत की, यह भेद सोई पासके॥

(८)

उल्टी बहाई आज गंगा, यह किसी अवधूत ने।
हरिभक्त, शुचितम, संत, गुरु, पितु, मातु, पावन पूत ने॥
जो न्हाय भोला! प्रेम से, कामादि पर जय पाय हैं।
स्वाराज्य निष्कंटक लहै, नहिं गर्भ में फिर आय हैं॥

जीता हुआ ही है मरा

(१)

कुग्रन्थ पढ़ता मूढ़ जो, सत्शास्त्र है पढ़ता नहीं।
दुस्सङ्ग में रहता सदा सत्संग है करता नहीं॥
थोड़ा पढ़ा पांण्डित्य के, अभिमान से जो है भरा।
लाखों मनोरथ कर रहा, जीता हुआ ही है मरा॥

(२)

ना जानता है जगत् को, ना आपको पहिचानता।
माया तथा मायेश का भी, है नहीं जिसको पता॥
दिन बोझ ढोया रात में, थक खाट ऊपर जा धरा।
या खा मरा, या लड़ मरा, जीता हुआ ही है मरा॥

(३)

खींचे कहीं को कान है, खींचे कहीं को नाक है।
खींचे कहीं को जीभ तो, खींचे कहीं को आंख है॥
खींचे कहीं को हैं त्वचा, मज्जने जिसे वशमें करा।
बहु पत्नियों का दास सो, जीता हुआ ही है मरा॥

(४)

आचार से तो भ्रष्ट है, ना धर्म किंचित् जानता।
इस लोक को सच्चा कहे, पर लोक नाहीं मानता॥
हिंसा करे है अन्य की, निज स्वार्थ मांही है खरा।
अपकीर्ति जिसकी हो रही, जीता हुआ ही है मरा॥

(५)

कोई करे है यज्ञ, कोई देय सादर दान है।
स्वाध्याय से, जप, शौच से, कोई करे कल्याण है॥
निज श्रेय में जो लग गया, तर जायगा या है तरा।
ना जानता निज श्रेय जो, जीता हुआ ही है मरा॥

(६)

हरि नाम जपता प्रेम से, आनन्द अद्भुत पाय है।
गीता पढ़े या भागवत, मन मोद नित्य बढ़ाय है॥
सुख शान्ति का अनुभव करे, जो ईश का ले आसरा।
ले आसरा जो जगत् का, जीता हुआ ही है मरा॥

(७)

सुनता सदा जो तत्त्व को, करता उसी का है मनन।
अथवा निदिध्यासन करे, कहते जिसे हैं चिन्तवन॥
जीना उसी का है सफल, इस में नहीं संशय जरा।
श्रवणादि कुछ भी ना करे, जीता हुआ ही है मरा॥

(८)

निज आत्म में है जग गया, संसार से है सो गया।
सुख सिंधु में जो मग्न है, जीवत्त्व जिसका खो गया॥
घट योनि सम भवसिंधु जो, दो चल्लुओं में पी गया।
भोला! नहीं मरता कभी, सो जी गया, सो जी गया॥

जीवन मुक्ति

(१)

अज ब्रह्मने क्यों जन्म लीन्हा, हे गुरो ! बतलाइये ?
हूँ दास सच्चा आपका, जो मर्म हो जतलाइये ?
सुन शिष्य ! केवल ब्रह्म, जीवन्मुक्ति के सुख के लिये ।
है देह लीला से धरी, जग सैर करने के लिये ॥

(२)

होता अविद्या नाम का, यदि यह कपट नाटक नहीं ।
तो दुःख ना होता कहीं, सुख भी नहीं होता कहीं ॥
ज्यों दुःख भोगे बाद ही, सुख स्वाद नर है जानता ।
त्यों विश्व के जाने विना, ना ब्रह्म सुख पहिचानता ॥

(३)

ना देह है अद्वैत में, न विदेह माहीं द्वैत है ।
ब्रह्मज्ञ जीवन्मुक्त देखे, द्वैत अरु अद्वैत है ॥
न सदेह मांहि विदेहता, न विदेह मांहि सदेहता ।
दोनों ही जीवन्मुक्त मांहि, सदेहता सह. विदेहता ॥

(४)

यदि होय नाहिं विदेह, सो सहदेह जो है दीखता ।
कैसे जनक सहदेह की, कहलाय शिष्य विदेहता ?
विनु देह की सह देहता, यदि होय नाहीं तो बता ?
कैसे विदेह सदेह भी, राजा जनक कहलावता ?

(५)

जैसे कही निर्मुक्ति है, तैसे हि जीवन्मुक्तता ।
हो प्राप्त जीवन्मुक्ति, तब ही प्राप्त हो निर्मुक्तता ॥
कैवल्य ना हो ज्ञान बिनु, ना मुक्त होय मरा हुआ ।
जीते हुए ही ज्ञान हो, तो मुक्त है जीता हुआ ॥

(६)

सुख होय जीवन्मुक्ति का, कुछ काल ही ऐसा नहीं ।
सनकादि जीवन्मुक्त रहते, कल्प भर हैं मुक्त ही ॥
विश्वेशका है खेल 'जीवन्मुक्ति' निर्णय हो चुका ।
जो तत्त्व जीवन्मुक्ति का, सो हेतु है निर्मुक्ति का ॥

(७)

नारद तथा सनकादि उसमें, खेलते हैं सर्वदा ।
ज्ञानी उसी में आज कल, क्रीड़ा करें हैं नित्यदा ॥
निष्ठा न जिनको तत्त्व में, वे हैं नहीं जनकादि में ।
चाहे भले वन में रहें, तो भी नहीं सनकादि में ॥

(८)

गम्भीर गुरु थोड़ा कहैं, अमृत की वर्षा हैं करें ।
वर्षांत के ज्यों मेघ गरजें, मंद खेतों को भरें ॥
अद्वैत है या द्वैत है, भोला ! न कर संदेह रे ।
जो है वही है सर्वदा, 'जो है नहीं ना होय रे ॥

सद्गुरु !

(१)

साथी सगे सब स्वार्थ के हैं, स्वार्थ का संसार है।
निःस्वार्थ सद्गुरु देव हैं, सच्चा वही हितकार है॥
ईश्वर कृपा होवे तभी, सद्गुरु कृपा जब होय है।
सद्गुरु कृपा बिनु ईश भी, नहीं मैल मनका धोय है॥

(२)

निर्जीव सारे शास्त्र सच्चा मार्ग ही दिखलायँ हैं।
दृढ़ ग्रन्थि चिज्जड़ खोलने की, युक्ति नहीं बतलायँ हैं॥
निस्संग होने के सबब से, ईश भी रुक जाय है।
गुरु गांठ खोलन रीति तो, गुरुदेव ही बतलाय है॥

(३)

गुरुदेव अद्भुत रूप हैं, पर-धाम मांहि विराजते।
उपदेश देने सत्य का, इस लोक में आजावते॥
दुर्गम्य का अनुभव करा, भव से परे लेजावते।
पर-धाम में पहुंचाय कर, स्वाराज्य पद दिलावते॥

(४)

छुड़वाय कर सब कामना, कर देय हैं निष्कामना।
सब कामनाओं का बता घर, पूर्ण करते कामना॥
मिथ्या विषय सुख से हटा, सुख सिंधु देते हैं बता।
सुख सिंधु जल से पूर्ण, अपना आप देते हैं जता॥

(५)

तनु, इन्द्रियां, मन, बुद्धि सब, सम्बन्ध छुड़वा देयँ हैं।
अणु को बृहत् करि सूर्य ज्यों, जग मांहि चमका देयँ हैं॥
आधार सारे विश्व का, सब का हि जो अध्यक्ष है।
सो ही बनाते जीव को, ब्रह्माण्ड जिसका साक्ष्य है॥

(६)

इक तुच्छ वस्तु छीन कर, आपत्तियां सब मेट कर।
प्याला पिला कर अमृत का, मर को बनाते हैं अमर॥
सब भांति से कृत कृत्य कर, परतंत्र को निज तंत्र कर।
अधिपति रहित देते बना, भय से छुटा करते निडर॥

(७)

कंचन बनाते देह को, रज, मैल सब हर लेयँ हैं।
ले 'कांच कच्चा हाथ से, कौस्तुभमणी दे देयँ हैं॥
इस लोक से, पर लोक से, सब कर्म से, सब धर्म से।
पर तत्त्व में पहुंचाय कर, ऊंचा करें हैं सर्व से॥

(८)

सद्गुरु जिसे मिल जाय , सोही धन्य है जग मन्य है।
सुर सिद्ध उसको पूजते, ता सम न कोऊ अन्य है॥
अधिकारि हो गुरु देव से, उपदेश जो नर पाय है।
भोला ! तरे संसार से, नहिं गर्भ में फिर आय है॥

काम

(१)

भोगे बहुत से भोग, बहु विध रूप लाखों धार कर।
फिर २ वही निशिदिन चहै है, मन्द मोहित विषय पर॥
दुख पाय है, चिल्लाय है, यदपि न विषय विष तू तजे।
हे मूढ़! अब भी चेत कर, परब्रह्म को क्यों ना भजे॥

(२)

तू है समझता निडर हो, हम भोगते हैं भोग को।
भोगा गया तू भोग से, यों ही बढ़ाया रोग को॥
निःसत्त्व जब तू हो गया, बे काम का जब रह गया।
तब भोग ने मारा तुझे, अरु-योनि को पलटा दिया॥

(३)

कुत्ता बना है काम का, दर दर फिरे अन्धा बना।
देखे नहीं सत् धर्म अरु, सत्शास्त्र पर भी भाव ना॥
सब होंय बुड्ढे जगत में, नहिं काम बुड्ढा हो कभी।
हो बुड्ढा उसके संग में, क्षण भर युवा होवे जभी॥

(४)

शर पांच ले तू हाथ में, शिव शान्त को छलने गया।
तब नेत्र ज्वाला प्रकट करके, भस्म तुझ को कर दिया॥
फिर भी रहा तू सूक्ष्म में, सब को जला कर मारता।
अत्यन्त तेरे नाश बिनु, नहिं शान्ति कोई धारता॥

(५)

हे काम ! जिस करके जगत में, जन्म तू ने है लिया।
छोड़े उसे भी तू नहीं, मन को विकारी कर दिया॥
तू अंगहीन अनंग है, तो भी महाबल धारता।
यदि देह होता स्थूल तब तो, क्या न क्या कर डालता॥

(६)

जादू बहुत तुझ में भरा, कुछ का हि कुछ दिखलाय है।
दुर्गन्ध को शुभगन्ध कर, सुन्दर सुखद जतलाय है॥
रणवीर कायर हो गया, जो हाथ तेरे में पड़ा।
अज्ञान में बलवान तू, पर-ब्रह्म से भी है बड़ा॥

(७)

दुख का खजाना दुष्ट तू, संताप सब को देय है।
है धर्म नाशक, पाप पोषक, बुद्धि को हर लेय है।
सैना सहित जहँ होय तू, वहँ से भगावे राम तू!
गोता खिलाय अशान्ति में, होने न दे आराम तू!!

(८)

जो जीतले तुझ को न ऐसा वीर है संसार में।
सब देव तापस, ऋषि, मुनी हैं दास तव दरबार में॥
भोला! जहां अद्वैत का निश्चय सदा अपरोक्ष है।
तहं जड़ सहित कट जाय है, यह संत का प्रत्यक्ष है॥

भक्ति !

(१)

होता भजन है भक्ति से, है भक्ति ईश्वर भावना
जब तक न होवे भावना, नहिं भक्ति की संभावना
दुख हारिनी, भव तारिनी, सुख कारिनी हरि भक्ति है
पावन परम हरि भक्ति में, प्रतिबंध जग आसक्ति है

(२)

सब मानते हैं ईश को, नित नाम जपते ईश क
माला घुमाते, ध्यान भी करते कभी जगदीश का
करते भजन हैं ईश का, जग वस्तुयें हैं मांगते
घर वार में, सुत-दार में, परिवार में अनुरागते

(३)

नहिं इसलिये करते भजन, हो ईश की संतुष्टता
अपनी खुशी, अपनी गरज, की चाहते हैं पुष्टता
इस लोक की, परलोक की, लाखों करोड़ों कामना
ऐश्वर्य की है लालसा, या चाहते हैं नामना

(४)

हो भक्ति कम संसार की, जगदीश में अनुराग है
अनुराग ज्यों २ ईश में, हो जगत् से वैराग्य है
है ज्ञान साधक भक्ति का, पुनि भक्ति साधक ज्ञान के
दोनों परस्पर पुष्ट हों, खोलें सड़क कल्याण के

(५)

जिस भक्त को इस भक्ति रस का, स्वाद जब आजाय है।
निस्सार यह संसार तब, तो दृष्टि में आजाय है॥
ब्रह्मादि का ऐश्वर्य, मिट्टी तुच्छ सा हो जाय है।
प्रति रोम भीतर बाह्य तन में, भक्ति रस भर जाय है॥

(६)

चढ़ता नशा है भक्ति का, रंग नेत्र दोनों जांय हैं।
जहँ जहँ नज़र है डालता, भगवान सन्मुख आंय हैं॥
प्रभु प्रेम में परिपूर्ण हो, सुध बुध सभी बिसराय है।
अपना पराया जाय छुट, प्रभुमय जगत् हो जाय है॥

(७)

खटका नहीं है खान का, चिन्ता नहीं हैं पान की।
ममता नहीं है देह की, परवा नहीं है प्राण की॥
भगवान की है आश, बैठा पास है भगवान के।
भगवत करें सब काम ज्यों, माता पिता सन्तान के॥

(८)

निजपन मिला कर इष्ट में, जो ईश के अर्पण हुआ।
सो इष्ट ही है हो गया, कुन्डल मिटा कंचन हुआ॥
पद पाय शाश्वत विष्णु का, सो धन्य अति ही धन्य है।
पितु मातु ताके धन्य भोला, पूज्य सो जग मन्य है॥

तृष्णा नहीं बूढ़ी हुई !

(१)

थे दान्त हाथी दांत सम, मजबूत हिलने लग गये
जैसे गिरें छत की कड़ी, इक एक गिरने लग गये
खूंटे गिरे, डाढें गिरीं, बत्तीसि सारी गिर गई
मुख होगया है पोपला, तृष्णा नहीं बूढ़ी हुई

(२)

आंखें हुई हैं धुंधली, पढ़ना पढ़ाना बन्द है
नहिं पास तक का दीखता, अब दृष्टि इतनी मन्द है
कुछ भी नहीं अब सूझता, है रात दिन की हो ग
आंखें दिखाई आंख ने, तृष्णा नहीं बूढ़ी हुई

(३)

अब कान आनाकानी की, ऊंचा सुनाई देय
जब कान पर चिल्लाय कोई, बात कुछ सुन लेय है
सुनना सुनाना छुट गया, नहिं आस सुनने की ग
बहिरे हुये हैं कान पर, तृष्णा नहीं बूढ़ी हु

(४)

काया गली, झुरीं पड़ी, लोहू हुआ है लाप
पग डिगमगाते चालते, कर कांपते, सिर हालत
ली हाथ लाठी बांस की, धनु सम कमर है झुक
काया हुई बूढ़ी मगर, तृष्णा नहीं बूढ़ी हु

(५)

बेटे बहू विपरीत हैं, माने नहीं कोई कहा।
रोटी मिले नहिं वक्त पर, है स्वाद भी जाता रहा॥
बाबा मरा, माई मरी, है कूच पत्नी कर गई।
इज्जात गई, लज्जत गई, तृष्णा नहीं बूढ़ी हुई॥

(६)

सब इन्द्रियां बलहीन हैं, नहिं देह में सामर्थ्य है।
नहिं खा सके, नहिं पी सके, सब भांति ही असमर्थ्य है॥
नहिं हिलसके, नहिं झुल सके, अब खाट तक भी कट गई।
मरना न फिर भी चाहता, तृष्णा नहीं बूढ़ी हुई॥

(७)

पुत्रादि कहते हैं सभी, बुड्ढा बहुत दुख पाय है।
देता हमें भी कष्ट है, मर क्यों नहीं अब जाय है !!
मर जाय अच्छा होय, अब तो कष्ट की हद हो गई।
मन ठोस है, तनु खोखला, तृष्णा नहीं बूढ़ी हुई॥

(८)

बुड्ढा मरण सब चाहते, बुड्ढा मरा ना चाहता।
धन-धाम के, कुल-ग्राम के, भोला ! मनोर्थ ठानता॥
वाणी हुई है बन्द, नाहीं देह आसक्ती गई।
तरुणी हुई है वासना, तृष्णा नहीं बूढ़ी हुई॥

अज्ञान से है भटकता !

(१)

यदि सत्य सुख है चाहता, तो आश जग की छोड़ दे
जग दुःख का भण्डार है, नाता जगत् से तोड़ दे।
जब तक जगत् का भाव है, नहिं अन्त दुःख का आयगा
अज्ञान से है भटकता, अज्ञान तज सुख पायगा।

(२)

है जगत् तेरे चित्त में, नहिं जगत तेरे बाह्य है
बाहर जगत् तू मानता है इसलिये दुख पाय है।
अज्ञान से सुख ढूंढता, अज्ञान से होता दुखी
अज्ञान से है भटकता, अज्ञान तज होगा सुखी।

(३)

धारण किया जग भाव तूने, आप को है ढक लिया
अज्ञान से ढक आपको, तू जीव अज्ञानी भया।
बन जीव संसारी हुआ, जग भाव को अब त्याग रे
अज्ञान से है भटकता, अज्ञान से बच भाग रे।

(४)

संसार यह निस्सार है, संसार से मत राग कर
अभ्यास से, वैराग्य से, स्व-स्वरूप में अनुराग कर।
नहिं लाभ कुछ नहिं हानि, तेरी अन्य के संसार से
अज्ञान से है भटकता, तू दूर सुख भण्डार से

(५)

जो ईश की है सृष्टि, उसको सृष्टि अपनी मानता।
जो मुख्य तेरी सृष्टि है, उसको नहिं पहिचानता॥
दे त्याग अपनी सृष्टि ईश्वर सृष्टिबाधक है नहीं।
अज्ञान से है भटकता, नहिं अज्ञ को सुख है कहीं॥

(६)

कर द्वैत की तू कल्पना, अद्वैत से है छुट गया।
है तू बृहत् छोटा हुआ, इस देह में है बँध गया॥
अज्ञान से अपने बंधा, इसका तुझे नहिं होश है।
अज्ञान अपने से भटकता, फिर रहा बेहोश है॥

(७)

जब तक रहे है स्वप्न में, नहिं स्वप्न मिथ्या हो कभी।
सुख दुःख जो हो स्वप्न में, सो भासता सच्चा सभी॥
सोता रहे है जब तलक, नहिं मुक्त दुख से होयगा।
अज्ञान निद्रा में पड़ा, नहिं नींद सुख की सोयगा॥

(८)

जागे नहीं है जब तलक, नहिं स्वप्न मिथ्या होय है।
स्व स्वरूप का विज्ञान ही, अज्ञान निद्रा खोय है॥
स्व-स्वरूप में जग जाय भोला! स्वप्न जग भग जायगा।
निर्मूल दुख हो जायगा, अविचल परम पद पायगा॥

मूर्खता !

(१)

मरते हुये सब देखता, बचना न कोई जानता।
तो भी मरा नहिं चाहता, मर को अमर है मानता॥
सब को दुखी है देखता, फिर दुःख से घबरावता।
दुख को नहीं दुख मानता, कितनी बड़ी यह मूर्खता॥

(२)

ज्यों सूर्य हो होकर उदय, फिर सांझ को छिप जावता।
त्यों ही सभी हैं घूमते, कोई नहीं थिर भासता।
यह देह मिट्टी का बना, दिन रात गलता देखता।
फिर भी न नश्वर जानता, कितनी बड़ी यह मूर्खता।

(३)

ज्यों बुद्बुदा क्षण में बने, क्षण में विगड़ फिर जावता।
क्षणमात्र ही है दीखता, नहिं दृष्टि में फिर आवता।
त्यों बुद्बदा यह देह भी, क्षण मात्र में ही टूटता।
ममता, अहंता, राग इस में, क्या नहीं यह मूर्खता।

(४)

ना आप को संसार मांही, मूर्ख कोई मानता।
ज्ञानी स्वयं को जानता, है अज्ञ पर को जानता।
मैं कौन हूं; नहीं जानता, निज पर नहीं पहिचानता।
विपरीत हैं सब देखता, कितनी बड़ी यह मूर्खता।

(५)

यह राज्य, धन, ऐश्वर्य सब, है चार दिन का चांदना।
नहिं मोह अंधियारा कभी, भी चाहते हैं टालना॥
दें दुःख वे 'सुख जानि के', लेने जिन्हें है दौड़ता।
पहिचानता नहिं हित अहित्, कितनी बड़ी यह मूर्खता॥

(६)

मांसादि का यह देह 'मैं', हूं आप ऐसा मानता।
इस देह के सम्बन्धियों को, बन्धु अपने जानता॥
ममता, अहंता दुःख है, यह ही नरक कहलावता।
अज्ञान कहलावे यही, यह ही बड़ी है मूर्खता॥

(७)

ज्यों ढोल में है पोल, त्यों ही पोल में संसार है।
डंडा लगे आसक्ति का, तब होय चिल्ल-पुकार है॥
आसक्ति दुख का मूल है, आसक्त नर दुख पावता।
आसक्ति कूं बंधन न जाने, यह बड़ी है मूर्खता॥

(८)

नहिं शोक हो नहिं मोह हो, ज्ञानी सदा रहता सुखी।
धर्मादि कुछ करता नहीं, भोला! नहीं होता दुखी॥
जब जान लीन्हा तत्त्व निज, ना लेश रहती दीनता।
स्वच्छन्दता, निर्द्वन्दता, आनन्द परम सुहावता॥

अब जाग जा ! निज रूप में !!

(१)

सत्शास्त्र कहते जगत् मिथ्या, स्वप्न सम निस्सार है।
निद्रा भयानक व्याधि है, आपत्ति का भंडार है॥
लू जेष्ट की सी चल रही, क्यों सो रहा है धूप में ?
हे पथिक् ! निद्रा त्याग दे, अब जाग जा ! निज रूप में !!

(२)

कहते अमानी संत भी, निद्रा महा अज्ञान है।
त्यागे बिना अज्ञान निद्रा, होय नहीं कल्यान है॥
आंखों सहित अंधा हुआ, क्यों गिर रहा भव कूप में ?
हे पथिक् ! निद्रा त्याग दे, अब जाग जा ! निजरूप में !!

(३)

जब कष्ट पड़ता आनके, कहते जगत् मिथ्या जभी।
संसार है निस्सार बालक, युवक कहते वृद्ध भी॥
अनुभव करे तू आप दुख का, रंक में अरु भूप में।
हे पथिक् ! निद्रा त्याग दे, अब जाग जा ! निज रूपमें !!

(४)

दिन रात डन्डा कष्ट का, है खोपड़ी पर बाजता।
नित शंख गूंजे मृत्यु का, यम का नगाड़ा गाज़ता॥
नित कामना विच्छिन्न् डसे, है मग्न पापड़-पूप में।
हे पथिक् ! निद्रा त्याग़ दे, अब जाग़ जा ! निज़ रूपमें !!

(५)

भोगे सदा तू कष्ट गाढ़ी, नींद में है सो रहा !
जंजीर आशा में बंधा, सर्वस्व अपना खो रहा !!
आसक्ति ने तुझ को गिराया, है अन्धेरे घूप में !
हे पथिक् ! निद्रा त्याग दे, अब जाग जा ! निज रूपमें !!

(६)

तव दुर्ग तनु में चोर, डाकू, ठग हज़ारों भर रहे !
तव दिव्य समता लूटते, आनन्दघन हैं हर रहे !!
सुन्दर असुन्दर तू हुआ, करि राग रूप-कुरूप में !
हे पथिक् ! निद्रा त्याग दे, अब जाग जा ! निज रूपमें !!

(७)

आया समय अब खोल, आंखें मोह निद्रा छोड़ दे !
जा जाग, भव से भाग, अब नाता जगत् से तोड़ दे !!
पछतायगा, दुख पायगा, रुचि मान ओदन-सूप में !
हे पथिक् ! निद्रा त्याग दे, अब जाग जा ! निज रूपमें !!

(८)

सत्शास्त्र के सुन वाक्य सत्, निर्मल हुआ अन्तःकरण ।
त्यागी भयंकर नींद 'जागा पथिक्' गुरु की ली शरण ॥
निज रूप में जाग्रत हुआ, कर प्रेम देव अनूप में ।
ाया भोला ! राज्य अविचल, जाग कर निज रूपमें ॥

मोक्ष सुख !

प्रश्न ? (१)

सबसे अधिक है मोक्ष सुख, दुख का न उसमें लेश है।
आनन्द का भंडार पूरण, शान्ति मात्र प्रदेश है॥
ऐसा कहें हैं वहुत से, एकान्त सेवन कर रहे।
संसार से मुख मोड़ कर, आलस्य में हैं मर रहे॥

(२)

आता नहीं है समझ में, कुछ बुद्धि चक्कर खाय है।
जो सुख यहां है सो वहां, चितु भिन्नता न जनाय है॥
त्रिपुटी रहित यदि होय सुख, तो भान हो सकता नहीं।
भोक्ता विना हो भोग ऐसा, 'भोग' नहीं देखा कहीं॥

उत्तर ! (३)

भाई ! नहीं तू जानता, क्या मोक्ष पद का अर्थ है।
है अर्थ छुटना मोक्ष का, छूटा हुआ ही मुक्त है॥
चाहे भला क्यों छूटना, बन्धन जिसे नहिं भासता।
बन्धन नहिं सूझे तुझे, क्या मोक्ष से फिर वासता ?

(४)

संसार में दुख के सिवा, बन्धन नहीं है दूसरा।
अज्ञान से संसार है, संसार में दुख है भरा॥
अज्ञान ही दुख रूप है, अज्ञान ही भव कूप है।
अज्ञान छुटना मोक्ष है, सुख मोक्ष अनुभव रूप है॥

(५)

जग हेतु है भव दुःख का, अज्ञान का जग कार्य है।
अज्ञान सह जग नाश सम्यक् मोक्ष सो कहलाय है॥
जहं भिन्न हो सुख भान सो, ब्रह्मा पितामह लोक है।
सो मोक्ष नहिं है वास्तविक, पूरा नहीं निःशोक है॥

(६)

सुखरूप आत्मा है सभी का, दुख न उसमें लेश है।
अज्ञान से छुप है गया, भासे इसी से क्लेश है॥
अत्यन्त दुख का नाश हो, दुख हो न तीनों काल में।
सो मोक्ष ही सुख रूप है, सम एक रस हर हाल में॥

(७)

सुख चाहते हैं सर्व, दुःखाभाव को सुख मानते।
सुख जानते हैं जगत् का, संपूर्ण सुख नहिं जानते॥
दुख से मिला सुख भासता, इससे जगत् दुख रूप है।
है मोक्ष सुख का पूर्ण सागर, नित्यचित् सुख रूप है॥

(८)

है निर्विषय सुख नींद का, आनन्द में प्रतिबिम्ब सो।
है मोक्ष सुख अक्षय स्वयं ही, सिद्ध चिद्घन बिम्ब सो॥
अज्ञान या प्रतिबिम्ब से, नहिं निर्विकल्प मिला हुआ।
सुखमात्र केवल मोक्ष भोला! है नहीं कल्पा हुआ॥

परमात्मा !

(१)

परमात्म ! केवल एक तू, बहुरूपिया बन जाय !
तू आप अपने में अनेकों, कल्पना दिखलाय है !!
माया नटी क्रीड़ा करे, क्रीड़ा तुही करवाय हैं !
मायी तुही, माया तुही, आश्चर्य है, आश्चर्य है !!

(२)

तू है परम अव्यक्त तो, भी व्यक्त सा है भासता !
हो जाय है तू व्यक्ति तो, भी व्यक्ति से नहिं वासता !!
तुझ ठोस में भी पोल, यह माया मरी दिखलाय है !
माया नहीं, नहिं पोल है, आश्चर्य है, आश्चर्य है !!

(३)

परमात्म ! तू दानी महा, दाता न तुझ सा कोय है !
जो भक्त भजता है तुझे, सो रूप तेरा होय है !!
सच्चित् तथा आनन्दघन, अद्वैत इकरस होय सो।
सोऽहं अहं सो जो भजे नर, धन्य है अति धन्य सो ॥

(४)

परमात्म ! तू ही सर्व है, सब विश्व तू ही धारता !
तू पुत्र, पुत्री, बन्धु तू, माता तुही, तू ही पिता !!
जो स्वर्ग अथवा नरक है, घर-धाम-धन या धान्य है।
जब भेद तज कर देखते, तेरे सिवा नहिं अन्य है ॥

(५)

परमात्म ! तेरे शास्त्र हैं, तू शास्त्र में नहिं आय है !
है शब्द से तू दूर फिर भी, शब्द लक्ष कराय है !!
मन, बुद्धि अथवा चित्त से, जाना नहीं तू जाय है !
सच्चा मुमुक्षू बुद्धि द्वारा, बोध फिर भी पाय है !!

(६)

परमात्म ! जगदाधार !, जग का भान तू करवाय है !
जब पूर्ण तेरा भान हो, तब भेद सब उड़ जाय है !!
आधार तू है जगत का, आधार तू जगदीश का !
आधार माया का तुही, आधार मायाधीश का !!

(७)

परमात्म ! तुझ को जानले, सो जान सब कुछ जाय है !
तुझ को नहीं जो जानता, भव सिन्धु गोते खाय है !!
सुखरूप तेरा ज्ञान है, दुखरूप तव अज्ञान है !
अज्ञान तव अज्ञान सबका, ज्ञान तव सब ज्ञान है !!

(८)

परमात्म ! तुझको जान कर, भोला ! अमर हो जाय है !
इस देह में रहता हुआ भी, विश्व में भर जाय है !!
सब भूप का भी भूप सो, स्वच्छन्दकृत पुरुपार्थ है ।
सार्थक उसी का जन्म है, साधा वही परमार्थ है ॥

मूसलों से क्यों डरे ?

(१)

कोई कहीं पर गर्भिणी, बच्चा जभी जनने लगी।
पीड़ा हुई अत्यन्त जब, हाय ! हा करने लगी॥
बोली पड़ोसन धैर्य धरि, बहिना रुदन अब मत करे।
जब ओखली में सिर दिया, तब मूसलों से क्यों डरे ?

(२)

रावण बहिन लज्जा रहित, मोहित हुई थी काम से।
जाती लषण पे थी कभी, मिलती कभी थी राम से॥
निर्लज्ज पूरा होय जो, सो नाक का फिर क्या करे !
जब ओखली में सिर दिया, तब मूसलों से क्यों डरे ?

(३)

थे सैन्य दोनों सामने, रण शंख भी थे बज चुके।
हिंसा समझ गुरु आदि की, अर्जुन हुआ वश मोहके॥
श्री कृष्ण बोले मूढ़ता तज, क्लैब्यता से क्या सरे।
जब ओखली में सिर दिया, तब मूसलों से क्यों डरे ?

(४)

भिक्षा रहा है मांग भिक्षुक, सेठ गाली बक रहा।
भिक्षुक नहीं कुछ बोलता, मुख सेठ का है तक रहा॥
धन-धाम ही सब तज दिये, तब क्रोध लेकर क्या करे ?
जब ओखली में सिर दिया, तब मूसलों से क्यों डरे ?

(५)

स्वच्छन्दता उत्तम महा, सब से बुरी परतन्त्रता।
पर पेटधारी एक भी, स्वच्छन्द नाहीं दीखता॥
है पेट यह भारी बला, जैसे बने वैसे भरे।
जब ओखली में सिर दिया, तब मूसलों से क्यों डरे?

(६)

निज धर्म निश्चय पुण्य है, पर-धर्म निश्चय पाप है।
निज धर्म का पालन करे, सो धीर नर निष्पाप है॥
यमराज की पदवी मिले, तो कौन ना हिंसा करे?
जब ओखली में सिर दिया, तब मूसलों से क्यों डरे?

(७)

है ओखली यह देह, शिर देना कहा तन धारना।
जहं देह है तहं दुःख है, यह सत्य है निर्धारणा॥
सहले खुशी से दुःख जो, सो दुःख से होवे परे।
जब ओखली में सिर दिया, तब मूसलों से क्यों डरे?

(८)

यदि मोक्षपद तू चाहता, ब्रह्माण्ड पर धर आग रे!
धन-पुत्र-दारा छोड़ दे, ममता, अहंता त्याग रे!!
भोला! न जीता मर सके; संसार से तो ना तरे!
जब ओखली में सिर दिया, तब मूसलों से क्यों डरे?

फिर मन बता कैसे लगे ?

(१)

चिन्ता हजारों लग रहीं, सुत-दार की, परिवार की !
तृष्णा कभी घटती नहीं, है भूख 'दो खा' चार की !!
पीछे लगे हैं चोर जो, कहलाय हैं साथी सगे !
श्रीराम, शिव या कृष्ण में, फिर मन बता कैसे लगे ?

(२)

अच्छा लगे पीना तुझे, अच्छा लगे खाना तुझे !
अच्छा लगे है नाचना, अच्छा लगे गाना तुझे !!
दुस्संग में दौड़े सदा, सत्संग से कोसों भगे !
निस्संग, निर्मल देव में, फिर मन बता कैसे लगे ?

(३)

माया नटी ने है रचा, नाटक अनोखा यह जगत् !
जो देखता फंस जाय सोई, भूल जाता सत असत् !!
देखे हजारों चित्र निशदिन, रंग लाखों से रंगे !
बे रंग में, बे रूप में, फिर मन बता कैसे लगे ?

(४)

बोला युधिष्ठिर झूठ आधा, रथ उसी क्षण गिर गया ।
अपकीर्ति फैली विश्व में, मन भी तुरत मैला भया ॥
बोले सदा ही झूठ जो, दिन रात लोगों को ठगे !
सच्चे अमल शिव शुद्ध में, फिर मन बता कैसे लगे ?

(५)

थोथे पढ़े पोथे सदा, पढ़ता नहीं सद्ग्रन्थ है।
करता सदा तप तामसी, ना जानता सत्पन्थ है॥
पीता नहीं है भक्तिरस, ना ज्ञान गुड़ में ही पगे।
अनुपम, निरामय ब्रह्म में, फिर मन बता कैसे लगे ?

(६)

व्यवहार सच्चा जानता, चर देह अचर मानता।
संसार में सुख ढूंढता, सुख-रूप शिव ना जानता॥
विश्वेश में तो सो रहा है, विश्व माहीं है जगे।
निष्कल निरंजन तत्त्व में, फिर मन बता कैसे लगे ?

(७)

हैं देह तीनों रोगमय, तीनों अवस्थायें स्वप्न।
विश्वादि तीनों कल्पना, आत्मा अमर चैतन्यघन॥
ऐसा तुझे हो ज्ञान तब ही, भाग्य तब सोया जगे।
पावन-परम शिवशान्त में, फिर मन नहीं कैसे लगे ?

(८)

बाहर नहीं है सुख जरा, सुख-सिन्धु भीतर है भरा।
पर मूढ़ बाहर खोजता, ज्यों हरिण कस्तूरी भरा॥
सुख-सिन्धु यदि मन देखले, तो फिर नहीं बाहर भगे।
भोला ! चलाये से 'कभी भी ना चले' ऐसा लगे

जीव सृष्टीऔर ईश सृष्टी ?

(१)

ना ईश सृष्टी बांधती, ना दुःख काऊ देय है।
सब के लिये है एकसी, करती सभी का श्रेय।
बंधन करे है जीव सृष्टी, दुःख भी देती है वही।
सब के लिये ना एकसी, प्रत्येक की है भिन्न ही॥

(२)

है जीव सृष्टी मानसी, अरू ईश सृष्टी बाह्य है।
मन में रहे है दुःख-सुख, बाहर नजर ना आय है।
अन्तःकरण की वृत्ति से, है ईश सृष्टी भासती।
साक्षी प्रकाशे जीव, सृष्टी भ्रांति मांहि भासती॥

(३)

मणि एक बाहर दीखती, ज्ञानी नहीं छूता उसे।
ज्यों धूल उसको जानता, है त्याग देता दूर से।
रागी उठाने दौड़ते, जो पाय सो होता सुखी।
ना पाय तो शिर ठोकता, मन मांहि भी होता दुखी।

(४)

जो ईश सृष्टी मांहि है, सो एक मणि सामान्य है।
होता सुखी पा एक नर, होता दुखी नर अन्य है।
तीजा नहीं होता सुखी, ना दुःख ही है मानता।
लाता न मन में क्षोभ है, सम दुःख सुख है जानता।

(५)

नहिं होय बाधक ईश सृष्टी है सहायक ज्ञान में।
ना द्वैत के देखे बिना, अद्वैत आवे ध्यान में ॥
गुरु शास्त्र दोनों द्वैत के अद्वैत को बतलायं हैं।
क्या जीव है, क्या ईश है, क्या ब्रह्म ! सब जतलायं हैं ॥

(६)

दो भांति की है जीव सृष्टी, होय जिस से बन्ध है।
दोनों यद्यपि हैं बांधती, इक तीव्र है, इक मन्द है ॥
प्रत्यक्ष देते दुःख हैं, रागादि इससे तीव्र हैं।
संकल्प दूजा मन्द है, ऐसा कहैं नर धीर हैं ॥

(७)

रागादि पहिले त्यागिये, संकल्प पीछे त्यागिये।
ममता, अहंता त्याग, शाश्वत् तत्त्व में अनुरागिये ॥
पुरुषार्थ यह ही मुख्य है, मत भेद बुद्धी कीजिये।
भांडा दुई का फोड़िये, एकत्व में मन दीजिये ॥

(८)

भोला ! न सृष्टी बाह्य है, यदि है न तो भी बांधती।
सृष्टी रहै मन मांहि सोई, बांधती अरु रांधती ॥
कामादि शत्रु जीत कर, संकल्प जो तज देय है।
सो धीर है, सो वीर है, साम्राज्य सोई लेय है ॥

आश्चर्य ।

(१)

छुपता कभी भी है नहीं, सब से प्रथम है भासता
सब को उजाला दे रहा, रवि चन्द्र-आदि प्रकाशता
सब से परम प्रत्यक्ष है, हरदम दिखाई दे रहा
देखा न कोई आज तक, आश्चर्य कैसा है महा।

(२)

सब को सदा ही जानता, फिर भी न कुछ भी जानता
है आप अपना आप फिर भी, अन्य निज को मानता।
करता नहीं कुछ भी कभी, करता सभी कुछ आप ही
है ब्रह्म दीखे है जगत्, आश्चर्य आता है यही

(३)

कारण परम ब्रह्मांड का, सच्चा - स्वयं - सबसे खरा
सब विश्व जिसमें कल्पना, सब में रमा, सब में भरा
ज्यों सर्प के अध्यास से, सत् रज्जु छुप सी जाय है
सत् को छुपाया असत् ने, आश्चर्य यह ही आय है।

(४)

निश्चल सदा चलता नहीं, सब से अधिक है दौड़ता
आगे सभी से जाय है, पीछे सभी को छोड़ता।
सब में ठसाठस भर रहा, आवे नहीं ना जाय है
चलता हुआ सा दीखता, आश्चर्य यह ही आय है

(५)

सब विश्व को सुख देय है, सुख का परम भंडार है।
सुख रूप है, सुख-सिन्धु है, सुखमात्र सुख का सार है॥
सुख भूल सुख की खोज में, नर मूढ़ फिरता वाह्य है।
नहीं देखता है आपको, आश्चर्य यह ही आय है॥

(६)

ना देश से ना काल से ही, अन्त जिसका हो सके!
अद्वैत अवयव से रहित, ना एक से हो दो सके॥
होता वही दो तीन फिर, संख्या रहित हो जाय है।
अविभक्त के भी भाग हों, आश्चर्य यह ही आय है॥

(७)

तीनों शरीरों से अलग, तीनों अवस्था से परे।
विश्वादि तीनों से पृथक्, अभिमान किंचित् ना करे॥
ना ईश है ना जीव है, कारण नहीं ना कार्य है।
तो भी सभी कुछ बन गया, कैसा महा आश्चर्य है॥

(८)

वाणी बिना ही बोलता है, वेद चार बनाय है।
बिनु हाथ रचता विश्व है, फिर विश्व को खाजाय है॥
ऐसे अनोखे देव को, नर मूढ़ कैसे पा सके।
भोला! शरण ले ईश की, सो ही उसे है पा सके॥

ना मृत्यु उसको खाय है !

(१)

आशा जिसे धन-धाम की, जो चाहता सुत - दार है।
आशा करे ऐश्वर्य की, रुचता जिसे परिवार है॥
स्वर्गादि की आशा करे, जन्मे पुनः मर जाय है।
जो नर निराशा हो गया, ना मृत्यु उसको खाय है॥

(२)

जब तक हरा है वृक्ष तब तक घुन न लगने पाय है।
जो सूख जाता वृक्ष उसको, घुन तुरत लग जाय है॥
चिन्ता जिसे हो खा रही, सो शीघ्र नर मर जाय है।
निश्चिन्त जो नर हो गया, ना मृत्यु उसको खाय है॥

(३)

है पास जिसके द्रव्य सोई, मार्ग में लुट जाय है।
जो कुछ ना रखता पास सो, ना चोर से भय पाय है॥
जो राग रखता द्वेष या, सो मृत्यु मुखमें जाय है।
रागादि से जो है रहित, ना मृत्यु उसको खाय है॥

(४)

जो मूढ़ है वश काम के, नारी उसे छल लेय है।
स्वाधीन अपने कर उसे, बहु भांति पीड़ा देय है॥
निष्काम आत्माराम नर, ना नारि के वश आय है।
सन्तुष्ट रहता आप में, ना मृत्यु उसको खाय है॥

(५)

जो मूढ है वश क्रोध के, सो चित्त नित्य जलाय है।
हिंसा करे है अन्य की, सुख आप भी ना पाय है॥
करता नहीं है क्रोध जो, सो स्वस्थ झट हो जाय है।
निज तत्त्व में क्रीड़ा करे, ना मृत्यु उसको खाय है॥

(६)

लोभी सदा वश लोभ के, बनता सभी का दास है।
निज तत्त्व का करि विस्मरण, कर्ता स्वयं का नाश है॥
निर्लोभ जो हो जाय है, सो कोश अक्षय पाय है।
निर्वासना होता अमर, ना मृत्यु उसको खाय है !!

(७)

जो सत् असत् है जानता, ना भोग में ललचाय है।
सत्तत्त्व का करता मननं, सत्तत्त्व को ही ध्याय है॥
सत् में रहे है मग्न नित, सत् मांहि ही मिल जाय है।
सो सत्य ही होजाय है, ना मृत्यु उसको खाय है !!

(८)

पावन-परम निज तत्त्व का, जिस को हुआ विज्ञान है।
उसके लिये संसार मिथ्या, रज्जु सर्प समान है॥
जीना नहीं है चाहता, ना मृत्यु से घबराय है।
भोला ! सदा सो है अमर, ना मृत्यु उसको खाय है !!

एक का ही एक है।

(१)

शिव शुद्ध-शाश्वत, ब्रह्म, मायाधीश बनता ईश है।
वश हो अविद्या के कहीं, हो जाय जीव अनीश है॥
हो दीन विषयासक्त, करता पुण्य-पाप अनेक है।
बहु देह धारत देव, फिर भी एक का ही एक है॥

(२)

गुरु होय देता ज्ञान, सो ही शिष्य लेता ज्ञान है।
है आप ही सो देह देही, आप ही सो प्राण है॥
हो बाल करता हठ अनेकों, राखता निज टेक है।
होता युवा, हो वृद्ध, फिर भी एक का ही एक है॥

(३)

होता विधाता, विष्णु, सोही देव बनता रूद्र है।
सोही वरुण है, इन्द्र है, आदित्य पावक, चन्द्र है॥
सो राहु है, सो केतु है, सो मीन है, सो मेष है।
ध्रुव, सप्तऋषि, गिरिमेरु, फिर भी एक का ही एक है॥

(४)

वक्ता वही, वक्तव्य है, श्रोता वही, श्रोतव्य है।
ध्याता वही, ध्यातव्य है, ज्ञाता वही, ज्ञातव्य है॥
है वेद वेत्ता, वेद सो, सो योग, सोही सांख्य है।
योगेश है, योगीश फिर भी एक का ही एक है॥

(५)

कर्त्ता, करण है, कर्म, भोक्ता भोग्य सोही भोग है।
सो है अमृत, सो मृत्यु है, सो औषधी, सो रोग है॥
सो अज्ञ है, सो सुज्ञ, सो, अविवेक, सोहि विवेक है।
है देव, दानव, मनुज, फिर भी एक का ही एक है॥

(६)

डंडी कहीं सो मारता, पूरा कहीं सो तोलता।
मिथ्या करे भाषण वही, हित, सत्य, मृदु है बोलता॥
सो माप है, सो तोल है, सो विन्दु है, सो रेख है:
सो अंक है, सो बीज, फिर भी एक का ही एक है॥

(७)

सो राग है, सो रागिनी, सो ताल है, सो तान है।
सो नाचता, सो गावता, सो नृत्य है, सो गान है॥
सो उच्च, मध्यम, मंद है, सो है ध्वनी, सो टेक है।
सरगम वही, सममींड़, फिर भी एक का ही एक है॥

(८)

जब भूल जाता आप को, तब ठोकरें खाता फिरे!
ऊंचा चढ़े, नीचा गिरे, जन्मा करे, फिर फिर मरे!!
गुरु-शास्त्र से पा ज्ञान, मारे रेख पर भी मेख है।
भ्रम-भेद जब मिट जाय, भोला! एक का ही एक है॥

यह काल है सब से बली !

(१)

कल वृक्ष देखा था हरा, सो आज सूखा दीखता।
कल फल लदे थे डाल पर, हैं आज सब ही लापता॥
यदि फूल सूखा आज तो, मुरझांयगी कल को कली।
सब काल के हैं गाल में, यह काल है सब से बली॥

(२)

चैं, मैं, सदा ही होय थी, कल थी हवेली भर रही।
सो हाय! अब सूनी पड़ी, है शोक मानो कर रही॥
जहं थी गली मैदान तहँ, मैदान था तहं है गली।
ऊजड़ पड़ी बहु-बस्तियां, यह काल है सब से बली॥

(३)

सँझा हुई तड़का हुआ, दिन जात आई रात है।
जाड़ा गया गर्मी गयी, फिर आ गई वर्षात है॥
जन्मी, बढ़ी, बूढ़ी हुई, फिर देह मर्घट में जली।
जल कर पुनः भस्मी हुई, यह काल है सब से बली॥

(४)

कल हँस रहे थे गा रहे थे, खेलते थे बाग में।
ऐश्वर्य-मद से चूर देखे, आज जलते आग में॥
दो चार दिन डोंडी बजाकर, अन्त अपनी राह ली।
मानों हुये ही थे नहीं, यह काल है सब से बली॥

(५)

जिस रोज बालक जन्म लेता, यम उसी दिन आय है।
रहता सदाही साथ निशिदिन, साथ ही ले जाय है॥
हो चोर अथवा साह हो, छलहीन हो अथवा छली।
नाहीं किसी को छोड़ता, यह काल है सब से बली॥

(६)

तज राज्य वन में जाय, वर्षों राम थे फिरते रहे।
बनवास में राजा युधिष्ठर, दुःख थे नाना सहे॥
चिरकाल नल मारा फिरा, भावी किसी से ना टली।
होनी सदा होके रही, यह काल है सब से बली॥

(७)

ब्रह्मा हजारों बन चुके, लाखों पुरन्दर बन लिये।
राजर्षि बहु गणना रहित, महिपाल बनकर चल दिये॥
रावण सरीखे मर गये, इस देह की फिर क्या चली।
हारे सभी इस काल से, यह काल है सब से बली॥

(८)

यदि काल खाता अन्य सब, कालेश को ना खा सके।
जो काल का हो काल, उसके पास कैसे जा सके॥
तज सर्व 'भज कालेश' भोला ! बात यह ही है भली।
फिर भय तुझे क्या काल का, कालेश है सब से बली॥

पंडित उसी का नाम है।

(१)

मटका, भरा छलके नहीं, आधा भरा घट छलकता।
गुणपूर्ण करता गर्व ना, गुणहीन नर बहु भटकता॥
किंचित् न करता गर्व जो, यद्यपि परम गुण-धाम है।
हित मित मधुर है बोलता, पंडित उसी का नाम है॥

(२)

अप्राप्त नाहीं चाहता, ना शोक करता नष्ट का।
घबराय नाहीं विपत् में, ना ध्यान रंचक कष्ट का॥
शुभ कर्म करता चित्त दे, फिर भी सदा निष्काम है।
श्रद्धा -शमादिक युक्त है, पंडित उसी का नाम है॥

(३)

गंभीर 'जिसके चित्त की', ना थाह कोई पा सके।
सुख, दुःख, द्वन्द्वों मांहि सम, ना पास चिन्ता आ सके॥
जग है असत्, मैं भी असत् हूँ, सत्य केवल राम है।
विश्वास दृढ़ ऐसा जिसे, पंडित उसी का नाम है॥

(४)

ना हर्ष, नाहीं दर्प नाहीं, क्रोध जिसको खींचता।
ना मान, ना अपमान, नाहीं लोभ किंचित् ईंचता॥
ना पास बछिया, गाय ना, घर गांठ में ना दाम है।
फिर भी सदा सन्तुष्ट है, पंडित उसी का नाम है॥

(५)

सम शीत में, सम उष्ण में, सम एक रस वर्षात में।
सम द्रव्य में, दारिद्र में, सम दिवस में, सम रात में॥
कितनी पड़े झंझट भले, निर्विघ्न करता काम है।
आरम्भ सब पूरे करे, पंडित उसी का नाम है॥

(६)

प्रतिपक्ष समयक् जानता, संदेह सारे टारता।
सिद्धांत का वक्ता कुशल, निज इष्ट-मित्रन तारता॥
अक्षुब्ध जैसे क्षीर सागर, शान्त आत्माराम है।
जीवन-मरण से वीतभय, पंडित उसी का नाम है॥

(७)

कुछ भी न अपना मानता, या सर्व अपना जानता।
सब विश्व वंध्यापुत्र सम, शिव तत्त्व सच्चा मानता॥
मुख मोड़ कर संसार से, संतृप्त पूरण काम है।
सो धन्य है, सो मन्य हैं, पंडित उसी का नाम है॥

(८)

कोई फंसा है भोग में, कोई लगा है योग में।
लगता नहीं है योग में, फंसता नहीं है भोग में॥
निर्वासना निज तत्त्व में, करता सदा विश्राम है।
भोला ! वही नर धीर है, पंडित उसी का नाम है॥

भज रे ! उसे ही सर्वदा !!

(१)

हो जाय चिन्ता मग्न तू, जब आपड़े है आपदा !
बन जाय ईश्वर आप ही, जब जाय मिल कुछ सम्पदा !!
जब भी नहीं, अब भी नहीं, बतला भजेगा फिर कदा ?
जो देव सब चिन्ता हरे, भज रे ! उसे ही सर्वदा !!

(२)

था गर्भ में औंधा पड़ा, सब भांति दीन-अनाथ था !
उस दुर्दशा के मांहि भी, जो नाथ तेरे साथ था !!
सब तज भजूंगा मैं तुझे, तूने किया था वायदा !
अब क्यों उसे है भूलता, भज रे ! उसे ही सर्वदा !!

(३)

विक्षेप मन के त्याग दे, लय भी उसे होने न दे !
जड़ ठूंठसा होने न दे, रस स्वाद, भी चखने न दे !!
सम शान्त मन आलम्ब, बिन त्रिपुटी नहीं भासे यदा !
सो स्वच्छ तेरा तत्त्व है, भज रे ! उसे ही सर्वदा !!

(४)

मन इन्द्रियां सो जांय सब, तब आप जो है जागता !
त्यागे भले ही तू उसे, नांही तुझे जो त्यागता !!
बुद्धि गुहा में जो छुपा, रहता निकट तेरे सदा !!
अंतर्मुखी कर इन्द्रियां, भज रे ! उसे ही सर्वदा !

(५)

जो चेतता है सर्व को, ना अन्य जिसको चेतता !
जो देखता है विश्व को, ना विश्व उसको देखता !!
जो मिल रहा सबसे सदा, फिर भी रहे सबसे जुदा !
साक्षी सदा तव बुद्धि का, भज रे ! उसे ही सर्वदा !!

(६)

सनकादि जिसके ज्ञान से, सुख से सदा विचरा करें !
जनकादि करते राज्य भी, सब कुछ करें, कुछ ना करें !!
सम्बन्ध सारे तोड़दे, सम्बन्धियों को कर विदा !
एकान्त में आसन लगा, भज रे ! उसे ही सर्वदा !!

(७)

सुत-दार में आसक्त नर, छाया न जिसकी पा सके !
ज्ञानी, अमानी, सूक्ष्मदर्शी से कभी छुप ना सके !!
साधन नहीं है कुछ कठिन, कर सिद्ध ले या तीन 'दा'* !
दे त्याग पीछे तीन गुण, भज रे ! उसे ही सर्वदा !!

(८)

पाते नहीं हैं रत्न जो, तटमात्र पर जा बैठते !
लाते वही हैं रत्न जो गम्भीर जल में पैठते !!
कामादि का सिर तोड़, भोला ! ले गदाधर की गदा !
कामारि शिव की हो शरण, भज रे ! उसे ही सर्वदा !!

* दया, दान, दमन ये तीन 'दा' हैं।

ज्ञानी बड़ा ही चकित है !

(१)

मोदक-मधुर जो विषय के, अन्तर हलाहल विष भरे।
यह जानकर भी दौड़ कर, तिन हेतु कर आगे करे॥
विष-ज्वाल से है जल रहा, पर मान बैठा मुदित है।
यह देख अज्ञानी चरित, ज्ञानी बड़ा ही चकित है।

(२)

दारा-सुतादिक से बहुत, होते सदा देखे दुखी।
कोई नहीं है आज तक, इन से हुआ सम्यक् सुखी॥
फिर भी उन्हीं हित छटपटाता, हो रहा जग-व्यथित है।
यह देख अज्ञानी चरित, ज्ञानी बड़ा ही चकित है॥

(३)

'लव जग-प्रतिष्ठा हेतु ही', तन-धन सभी कुछ त्यागता।
द्वेषाग्नि उपजाता स्वयं, जलता 'नहीं है भागता'॥
झूठी क्षणिक जो शान है, उसके लिये यों श्रमित है।
यह देख अज्ञानी चरित, ज्ञानी बड़ा ही चकित है॥

(४)

जो था अतुल एश्वर्ययुत, वह अब चिता में जल रहा।
वैभव न आया काम कुछ, परिवार भी रोता रहा।
निस्सार जग कहता हुआ भी, मोह से ही ग्रसित है।
यह देख अज्ञानी चरित, ज्ञानी बड़ा ही चकित है।

(५)

त्यागी बना है देश हित, उत्साह से गृह तज दिया।
सिर तक कटाने के लिये, निज-देश पर है प्रण किया॥
अपमान के दो वाक्य सुन, जी-जान से पर कुपित है।
यह देख अज्ञानी चरित, ज्ञानी बड़ा ही चकित है॥

(६)

है ढूंढता सुख-शान्ति जग, पाता सदैव अशान्ति है।
है जानता 'तजता न पर', पकड़ी हुई जो भ्रान्ति है॥
है आज जिस से भागता, फिर कल उसी में कलित है।
यह देख अज्ञानी चरित, ज्ञानी बड़ा ही चकित है॥

(७)

हैं तर्कना करते विविध, पांडित्य का अभिमान है।
है कण्ठ तक मानों भरा, सब ज्ञान अरु विज्ञान है॥
तो भी सदा इनका हृदय, अघवासना से पतित है।
यह देख अज्ञानी चरित, ज्ञानी बड़ा ही चकित है॥

(८)

संसार से अति व्यथित है, अज्ञान निज का भान है।
ज्ञानाधिकारी है बना, अपरोक्ष भोला ! ज्ञान है॥
सद्गुरु शरण में प्राप्त है, सद्-बुद्धि से सम्पन्न है।
यह देख अज्ञानी चरित, ज्ञानी बड़ा ही चकित है॥

आम्रफल ! (आम)

(१)

हे आम्रफल ! क्या अमर फल, का मान हरने के लिये ?
तुझ को बनाया ईश ने, उपकार करने के लिये ?
जब आम्रफल हम खांय हैं, तब स्वाद अद्भुत आय है !
ले ओष्ठ से छाती तलक यक, लीक सी खिंच जाय है !!

(२)

प्राणी सभी खाते तुझे ! कुत्ते, गधे नहिं खा सकें।
हत-भाग्य प्राणी अमृत-सर, के पास कैसे जा सकें ॥
उत्साह से जो खांय हैं, वे भी तुझे कम जानते !
हे आम्रफल ! तव योग्यता, विरले चतुर पहिचानते !!

(३)

छोटा हुआ, मोटा हुआ, खट्टा हुआ, मीठा हुआ।
चिरकाल तप करता रहा, काया पलट होता गया ॥
पहिले हरा, पीछे सुनहरी, रंग केसर हो गया।
'था अम्ल' सो मीठा हुआ, हे आम्र ! अच्छा तप किया !!

(४)

सर्दी सही गर्मी सही, तू धूप में तपता रहा !
वर्षा सही, आंधी सही, उलटा टंगा पकता रहा !!
रोड़े लगे, पत्थर लगे, चुपचाप सब सहता रहा !
ओले गिरे, बिजली पड़ी, बहु कष्ट तूने है सहा !!

(५)

आते पखेरू वृक्ष पर थे, चोंच तुझ में मारते !
रहते हिलाते थे तुझे, पंजे कई थे गाड़ते !!
मौनी बना धर धैर्य सब, कुछ सह लिया जो जो भया।
तब तू सुहाने रंग का, स्वादिष्ट मीठा हो गया ॥

(६)

जो अन्य थे गर्मी तथा, आंधी न किंचित् सह सके।
वे भूमि पर नीचे गिरे, नहीं वृक्ष ऊपर रह सके ॥
जो कष्ट सह सकता नहीं, सामर्थ्य सो नहीं पाय है।
उत्कर्ष भी पाता नहीं, जन्मे वृथा मर जाय है !!

(७)

हे आम्र ! तेरा वृक्ष तुझ सम, फल हजारों देय है !
आवें पथिक जो छांह में, उनकी थकन हर लेय है !!
पत्ते हमें वह देय है, लकड़ी हमें वह देय है।
देता बसेरा पक्षियों को, कुछ न उन से लेय है !!

(८)

ज्यों आम्र- तरू कुल-श्रेष्ट, माहीं जन्म जो नर पाय है।
करके तपस्या कष्टमय ज्यों, आम्रफल पक जाय है ॥
ज्यों आम्रफल भोला ! अमर करता, सभी का श्रेय है।
सो धन्य है, हरि है स्वयं, मर को अमर कर देय है ॥

विषय विष !

(१)

चारों दिशा में अग्नि-ज्वाला, है भयंकर उठ रही।
बिजली कहीं पर पड़ रही, धरती कहीं पर फट रही॥
हैं जीव सोते बे खबर, शिर तक हिलाते हैं नहीं।
'होता हमारा नाश है', यह ध्यान तक करते नहीं॥

(२)

गर्मी किसी को कुछ लगे, तब चौंक सी हो जाय है।
'मैं स्वप्न हूं यह देखता', ऐसा समझ सोजाय है॥
जलने लगे हैं जब अधिक, रोने लगे, चिल्लाय है।
तो भी समझ कर स्वप्न ही, फिर नींद में पड़ जाय है॥

(३)

हैं विषय विषर सर्प जिन में, विष हलाहल भर रहा।
उन को पकड़ कर प्रेम से, है खेल उन से कर रहा॥
कोमल चमक को देख कर, आल्हाद मन में मानता।
हैं काटते यदि सर्प तो भी, खेल ही है जानता॥

(४)

जब काटते हैं जोर से, तो भी नहीं भय लागता।
दिन दिन अधिक है खेलता, नहिं छोड़ता नहिं भागता॥
विष को नहीं विष मानता, आनन्द कर निर्धारता।
भीतर उसे रख लेय है, वह जन्म तक जो मारता॥

(५)

है भ्रान्ति निद्रा में पड़ा, विषधर विषय नहिं जानता।
सेवन करे है प्रेम से, विष को अमृत है मानता॥
कोई कहे विष है विषय, विश्वास ही नहिं लावता।
झूंठा समझता है उसे, पागल तथा बतलावता॥

(६)

क्रीड़ा करे है सर्प से, धर्मादि सब कुछ छोड़ कर।
उन्मत्त रहता रात दिन, विश्वेश से मुख मोड़ कर॥
करता अहित अपना पराया, ईश तक को त्याग कर।
धिक्कार ऐसे मूढ़ को, विष-भोग में जो बेखबर॥

(७)

ईश्वर विषय साधन दिये, उपयोग उलटा कर रहा!
क्या दोष है इससे अधिक, यह पाप सब से है महा!!
उपयोग विषयों का यथावत, है यही चातुर्यता।
उपयोग हो विपरीत तो, इससे अधिक नहिं मूर्खता॥

(८)

ज्ञानी विषय है भोगता, करता न उनमें राग है।
'निस्संग होकर भोग हो', यह भोग में भी त्याग है॥
ज्ञानी बनाता विष अमृत, सुख सो यहां पर पाय है।
सद्गुरु कृपा से अन्त में, भोला! सुखी हो जाय है॥

हाय कितनी मूर्खता !

(१)

जो दिन गया सो दिन गया, नहिं लौटकर फिर आवता।
सुत या पिता जो मर गया, फिर मुख नहीं दिखलावता॥
नहिं वस्तु कोई स्थिर यहां, नर मूढ़ निश दिन देखता।
फिर भी उन्हें स्थिर मानता है, हाय कितनी मूर्खता !!

(२)

मैं कौन हूं आया कहां से, कुछ नहीं इसका पता !
जो जो यहां आये सभी वे, हो गये हैं लापता !!
यह बात निश्चय जानकर भी, नित्य रहना चाहता !
आंखों सहित अंधा हुआ है, हाय कितनी मूर्खता !!

(३)

जो है पदारथ जगत् का, सो जगत् में रह जाय है।
सब छोड़ जाता है यहां, नहिं साथ कुछ लेजाय है॥
है हाथ मूंदे आवता, खोले हुये है जावता।
फिर भी न ममता त्यागता है, हाय कितनी मूर्खता !!

(४)

यह देह उपजे धूल से, फिर धूल को ही खावता।
बढ़ता रहे है धूल से, फिर धूल में मिल जावता॥
मृदुमय विनाशी देह में, आसक्ति मूढ़ बढ़ावता।
ममता अहंता कर रहा है, हाय कितनी मूर्खता !!

(५)

संकल्प और विकल्प के, घोड़े घने दौड़ा रहा।
निश्चय कभी करता कभी, करता रहै चिन्ता महा॥
संकल्प आदिक है हवा, नहिं मूढ़ यह पहिचानता।
इस सूक्ष्म तन को आत्म माने, हाय कितनी मूर्खता॥

(६)

अज्ञान यह निस्तत्त्व है, निस्तत्त्व नाम अभाव का।
देखा कभी न अभाव कोई, आप अपने भाव का॥
निस्तत्त्व कारण देह को, नर अज्ञ आत्मा मानता।
निस्तत्त्व को अस्तित्त्व माने, हाय कितनी मूर्खता॥

(७)

नर नारि का यह देह है, समुदाय हड्डी चाम का।
अपवित्र दोनों एक से, कोई नहीं है काम का॥
नर नारि को वश काम के, हैं भेद उनमें भासता।
मोहित परस्पर हों दोनों, हाय कितनी मूर्खता॥

(८)

भोला ! परम, शुचि, शान्तिमय, चैतन्यसम सब में भरा।
सर्वत्र व्यापक एकरस, घटता न बढ़ता है ज़रा॥
सो आप अपना, आप :सबका, नित्य एक प्रकाशता।
नहिं ज्योतियों का ज्योति दीखे, हाय कितनी मूर्खता॥

यह कृष्ण का उपदेश है !

(१)

जो खाइये, जो पीजिये, जो होमिये, जो दीजिये ।
तप कीजिये, व्रत कीजिये, मेरे लिये ही कीजिये ॥
ना राग है शुभ से जिसे, नहीं अशुभ से द्वेष है ।
सो भक्त जीवन्मुक्त है, यह कृष्ण का उपदेश है ॥

(२)

बन्धन करेगा कर्म यह, शंका न मन में लाइये ।
सब कर्म कीजे प्रेम से, आलस्य दूर भगाइये ॥
जड़ कर्म मांही बांधने की, शक्ति नाहीं लेश है ।
मत कर्मफल में सक्त हो, यह कृष्ण का उपदेश है ॥

(३)

सुत, दार बन्धन रूप हैं, भक्तो ! न ऐसा मानिये ।
यह विश्व मेरी वाटिका है, सैर करने के लिये ॥
मेरे बनाये बाग से, होता तुम्हें क्यों क्लेश है ?
सब रूप मेरे देखिये, यह कृष्ण का उपदेश है ॥

(४)

धन भी नहीं बन्धन करे, धर्मादि धन से कीजिये ।
मत खोद पृथ्वी गाड़िये, अधिकारियों को दीजिये ॥
बांधे नहीं नर-देह यह, मेरा हि रूप विशेष है ।
मथुरा, अयोध्या है यही, यह कृष्ण का उपदेश है ॥

(५)

बन्धन करे है संग, यह भी जीव का अज्ञान है।
निस्संग को हो संग, इसमें युक्ति है प्रमाण है॥
आत्मा सदा निस्संग है, यह वेद का आदेश है।
विश्वास पूरा कीजिये, यह कृष्ण का उपदेश है॥

(६)

अज्ञान है निज तत्त्व का, भासे तभी तक संग है।
जब ज्ञान होवे आत्म का, तो जीव शुद्ध असंग है॥
परिपूर्ण है कूटस्थ जिसमें, काल है ना देश है।
निज आत्म को पहिचानिये, यह कृष्ण का उपदेश है॥

(७)

सब धर्म लौकिक त्याग कर, मेरी शरण ले लीजिये।
निष्पाप कर दूंगा तुम्हें, चिन्ता न किञ्चित् कीजिये॥
मम भक्त मत्पर का तुरत, कट जाय पाप अशेष है।
निष्पाप मुझ-को पाय है, यह कृष्ण का उपदेश है॥

(८)

भोला ! किसी ने आज तक, माया नहीं देखी कहीं।
जो है अजा जन्मे न सो, शश, शृङ्ग सम है ही नहीं॥
माया न माया कार्य, मायाधीश ना मायेश है।
अद्वैत केवल ब्रह्म है, यह कृष्ण का उपदेश है॥

चिन्ता मुझे किस बात की ?

(१)

बहु काम करना हो जिसे, सेवक न जिसके पास हो।
आज्ञा न हो या मानता, सो नर अधीर उदास हो॥
श्रोत्रादि ग्यारह इन्द्रियां हैं, सेविका मुझ नाथ की।
सेवा करें हैं रात दिन, चिन्ता मुझे किस बात की १

(२)

घर वृद्ध हैं माता पिता तो तीर्थ जाना व्यर्थ है।
माता पिता की सेवकाई, परम-उत्तम तीर्थ है॥
चिन्ता मुझे ना मात की, चिन्ता मुझे ना तात की।
शिव तात माता है शिवा, चिन्ता मुझे किस बात की २

(३)

है अन्न, कपड़ा मुख्य धन, चांदी कनक, मणि गौण धन।
गौ, भैंस, घोड़ा नाश धन, ऐसा कहें हैं वृद्ध जन॥
सब होय तो भी जाय ना, चिन्ता कभी दिन रात की।
सन्तोष धन से पूर्ण हूं, चिन्ता मुझे किस बात की ३

(४)

इस लोक के सुख की कई नर, चाह करके मर रहे।
परलोक के सुख के लिये, यज्ञादि कितने कर रहे॥
इच्छा कभी जाती नहीं, नर-मूढ़ भोगासक्त की।
इच्छा न मुझमें लेश है, चिन्ता मुझे किस बात की ४

(५)

हो शास्त्र में संशय जिसे, कर्त्तव्य उसका है श्रवण।
सन्देह जिसको तत्त्व में, कर्त्तव्य उसका है मनन ॥
शंका मुझे है ही नहीं, कोई किसी भी भाँति की।
निःशंक हूँ निर्द्वन्द्व हूँ, चिन्ता मुझे किस बात की ?

(६)

विपरीत हो यदि भावना, तो ध्यान करना चाहिये।
ना भूल कर देहादि का, अभिमान करना चाहिये ॥
मुझ में नहीं है गन्ध तक भी, भावना विपरीत की।
चिन्मात्र सत् निस्संग हूँ, चिन्ता मुझे किस बात की ?

(७)

मैं शुद्ध हूँ, मैं बुद्ध हूँ, तीनों गुणों से दूर हूँ।
मैं हूँ यहां मैं हूं वहां, सर्वत्र ही भरपूर हूँ ॥
पावन परम शिव एक रस, मैं मूर्ति हूँ कुशलात की।
है सर्वथा मेरा कुशल, चिन्ता मुझे किस बात की ?

(८)

इस भांति से करके मनन, तत्वज्ञ चुप हो जाय है।
भोला ! अभी तक बोलता, आश्चर्य भारी आय है ॥
क्या बोलना क्या चालना, हैं शक्ति तन संघात की।
बोले न बोले देह यह, चिन्ता मुझे किस बात की ?

(१)

है दुःख केवल मूढ़ता !

ना नारि देती दुःख है, नर भी न देता दुःख है।
नर मूढ़ अपनी मूढ़ता से, मोल लेता दुःख है॥
नर नारि में ना भेद कुछ है, भेद कामी कल्पता।
पाता इसी से दुःख है, है दुःख केवल मूढ़ता॥

(२)

ना पुत्र देता दुःख है, उपकार करता है यहां।
श्राद्धादि कर, यज्ञादि कर, सुत श्रेय करता है वहां॥
यदि पुत्र होता दुष्ट तो, वैराग्य है सिखलावता।
पुत्रेच्छु पाता दुःख है, है दुःख केवल मूढ़ता॥

(३)

सेवक न देते दुःख हैं, देते सभी आराम हैं।
आज्ञानुसारी होंय हैं, करते समय पर काम हैं॥
नेत्रादि सेवक साथ फिर भी, मूढ़ ! सेवक चाहता।
पाता उसी से दुःख है, है दुःख केवल मूढ़ता॥

(४)

धन-धाम देते भोग हैं, वेही कराते धर्म हैं।
यश, कीर्ति जग फैलाय हैं, देते बता सब मर्म हैं॥
धन पाय करता गर्व सो, अपकीर्ति जग में पावता।
धन चाह देती दुःख है, है दुःख केवल मूढ़ता॥

(५)

ज्यों वृक्ष द्रष्टा वृक्ष से, होता असंशय भिन्न है।
त्यों देह द्रष्टा देह से, देही सदा ही अन्य है॥
नर मूढ फिर भी देह को, है आप अपना मानता।
पाता इसी से दुःख है, है दुःख केवल मूढ़ता॥

(६)

निस्संग आत्मा शुद्ध है, माया मरी निस्सत्त्व है।
दी कहां से सृष्टि फिर, आवे कहां से दुःख है?
निस्संग में भी मूढ़ नर, है कल्प लेता संगता।
फिर क्यों भोगे न दुःख सो, है दुःख केवल मूढ़ता॥

(७)

आत्मा कभी मरता नहीं, मरता सदा ही देह है।
ना देह हो सकता अमर, इसमें नहीं सन्देह है॥
मर देह भी नाहीं मरे, नर मूढ़ आशा राखता।
पाता इसी से दुःख है, है दुःख केवल मूढ़ता॥

(८)

भोला! विवेकी धीर नर, सत् अरु असत् पहिचानता।
आशा तजे है असत् की, सत् मांहि रति है मानता॥
सुख से सदा है सोवता, सुख से सदा है जागता।
सुख नित्य है चातुर्यता, है दुःख केवल मूढ़ता॥

ज्ञान का माहात्म्य

(१)

यह ज्ञान जिस ने पालिया, उसने सभी कुछ पालिया।
जिसने न पाया ज्ञान उसने, जन्म लेकर क्या लिया ?
माता पिता को कष्ट दीन्हा, कष्ट पाया आप भी।
जिस से मिला उसको रुलाया, मूढ़ रोया आप भी॥

(२)

दारा करी, बच्चे बनाये, धन बढ़ाया मूढ़ ने।
सामान सब है यह रुदन का, क्या कमाया मूढ़ ने ?
नर धीर पाता ज्ञान जो, देहत्व से सो छूटता।
साम्राज्य अक्षय पावता, आनन्द अद्भुत लूटता॥

(३)

स्वर्गादि हित कर कर्म कोई, स्वर्ग माहीं जाय है।
कुछ काल करके भोग तहँ, रोता यहां ही आय है।
होता जिसे है ज्ञान सो सब विश्व में भर जाय है।
शिव शान्त शाश्वत होय है, ना जाय है ना आय है॥

(४)

जो सर्व का है जानना' सो जानना अज्ञान है।
जो आपका है जानना, सो जानना ही ज्ञान है॥
यदि जान लीन्हा आप को तो सर्व जाना आपने।
यदि जान लीन्हा सर्व तो कुछ भी न जाना आपने॥

(५)

जो जानता है कनक को, धोका नहीं सो खाय है।
पहिचानता ना कनक खोटा, कटक सो ले आय है॥
जो जान लेता आप को, मोहित नहीं सो होय है।
ना जानता जो आपको, सो मूढ़ निश दिन रोय है॥

(६)

मांसादिमय मैं देह हूं, यह जानना अज्ञान है।
'प्राणादि हूं मैं' देह ना, यह भी न सम्यक् ज्ञान है॥
चैतन्य करले भिन्न तन से, सो सुखी हो जाय है।
देहादि माने आप को, सर्वत्र सो भय पाय है॥

(७)

यह दुःखमय संसार भी, सुख-रूप होता ज्ञान से।
भय-शोक सब भग जाँय हैं, आती न चिन्ता ज्ञान से॥
जब एक शिव सर्वत्र है, तो भेद का क्या काम है?
जब भेद वन्ध्यापुत्र है, तो खेद का क्या काम है॥

(८)

जिस ज्ञानसे सम्पन्न हरिहर, दैत्य लाखों मारते।
फिर भी रहें निष्पाप, भक्तन दर्श से हैं तारते॥
उस ज्ञान का माहात्म्य भोला! कौन वर्णन कर सके।
जिसके बिना कोई कभी, भव-सिंधु से ना तर सके॥

नर जन्म किसका है सफल

(१)

दुस्संग में जाता नहीं, सत्संग करता नित्य है।
दुर्ग्रन्थ ना पढ़ता कभी, सद्ग्रन्थ पढ़ता नित्य है॥
शुभ-गुण बढ़ाता है सदा, अवगुण घटाने में कुशल।
मन शुद्ध है, वश इन्द्रियां, नर-जन्म उसका है सफल॥

(२)

धन का कमाना जानता, धन खर्च करना जानता।
सज्जन तथा दुर्जन तुरत, मुख देखते पहिचानता॥
हो प्रश्न कैसा ही कठिन, झट ही समझ कर देय हल।
धर्मयज्ञ भी, मर्म्मज्ञ भी, नर-जन्म उसका है सफल॥

(३)

चिन्ता न आगे की करे, ना सोच पीछे का करे।
जो प्राप्त हो सो लेयकर, मन में उसे नाहीं धरे॥
ज्यों स्वच्छ दर्पण 'चित्त अपना', नित्य त्यों रक्खे विमल।
चढ़ने न उस पर देय मल, नर-जन्म उसका है सफल॥

(४)

लाया न था कुछ साथ में, ना साथ कुछ ले जायगा।
मुट्ठी बंधा आया यहां खोले यहां से जायगा॥
रोता हुआ जन्मा यहां, हँसता हुआ जावे निकल।
रोते हुए सब छोड़कर, नर-जन्म उसका है सफल॥

(५)

बांधव न जाते साथ में, सब रह यहां ही जांय हैं।
'नाता निभाया बहुत' मर्घट मांहि पहुँचा आंय है॥
ऐसा समझ व्यवहार उनसे, धीर जो करता सरल।
ना प्रीति ही, ना वैर ही, नर-जन्म उसका है सफल॥

(६)

मम देह है तू मानता, तव देह से तू अन्य है।
है माल से मालिक अलग, यह बात सबको मन्य है॥
जब देह से तू भिन्न है, क्यों फिर बने है देह-मल ?
जो आपको जाने अमल, नर-जन्म उसका है सफल॥

(७)

तू जागने को, स्वप्न को, अरु नींद को है जानता।
ये हैं अवस्था देह की, क्यों आत्म इनको मानता ?
ना जन्म तेरा, ना मरण, तू तो सदा ही है अटल।
जो जानता आत्मा अचल, नर-जन्म उसका है सफल॥

(८)

कारण बना है जब तलक, ना कार्य तब तक जायगा।
भोला ! बना है चित्त तबतक, चेत्य ना छुट पायगा॥
पाता वही साम्राज्य अक्षय, चित्त जिसका जाय गल।
इस चित्त को देवे गला, नर जन्म उसका है सफल॥

शिष्टाचार !

(१)

अपना पराया कुछ नहीं, विश्वेश का सब विश्व है।
व्यवहार में है भिन्नता, परमार्थ से एकत्व है॥
करता सभी को प्यार है, सीधा-सरल व्यवहार है।
ना राग है, ना द्वेष है, यह शुद्ध शिष्टाचार है॥

(२)

नाहीं किसी से शत्रुता, नाहीं किसी से मित्रता।
जो चित्र जग में दीखते हैं, चित्त की है चित्रता॥
मोहित कभी होता नहीं, विश्वेश हित व्यापार है।
ममता-अहंता से रहित, यह मुख्य शिष्टाचार है॥

(३)

ना देखता है दृश्य, करता आत्म अनुसन्धान है।
चलते तथा बैठे हुए, शिव एक का ही ध्यान है॥
आत्मा समझता सार है, निस्सार सब संसार है।
संतुष्ट अपने आप में, यह मुख्य शिष्टाचार है॥

(४)

आत्मा अचल निस्संग है, सब कर्म करता देह है।
निश्चय अटल रखता सदा, करता नहीं सन्देह है॥
करता सभी है कर्म, पर बनता नहीं कर्तार है।
चिज्जड़ न करना एक, यह ही मुख्य शिष्टाचार है॥

(५)

नर-मूढ़ भोगासक्त होकर, दुःख पाता है सदा।
नर-धीर भोग विरक्त हो, रहता सुखी है सर्वदा॥
हो प्राप्त लेता भोग सो, ना शीश धरता भार है।
प्रारब्ध पर निर्भर सदा, यह मुख्य शिष्टाचार है॥

(६)

नर-मूढ़ मन है रोकता, पर रोक सकता है नहीं।
नर धीर मन ना रोकता, फिर भी नहीं जाता कहीं॥
जाता नहीं है मन कहीं, जब देखता ना सार है।
मन को लगाना सार में, यह मुख्य शिष्टाचार है॥

(७)

संसार यह निस्सार है, मन को सुझाना चाहिये।
है आप अपना सत्य शिव, यह भी सिखाना चाहिये॥
संसार जब निस्सार है, तो चित्त भी निस्सार है।
अद्वैत है एकत्व है, यह मुख्य शिष्टाचार है॥

(८)

भोला ! सभी दे त्याग रे, कर आप में अनुराग रे!
संसार से मुंख ढांक सोजा, तत्व मांही जाग रे॥
शिव है यहां शिव है वहां, शिव वार है शिव पार हैं।
शिव के सिवा ना अन्य हैं, यह शुद्ध शिष्टाचार हैं॥

किसका ज्ञान में अधिकार हैं ?

(१)

जप- तप किये से पाप जिसके सर्व हैं क्षय हो गये।
कामादि से जो मुक्त हैं, दम्भादि जिसके खो गये॥
निश्चय जिसे हैं होगया, संसार यह निस्सार है।
शम-दम-दया से युक्त, उसका ज्ञान में अधिकार है॥

(२)

ना भोग जिसको खेंचते, ना क्षोभ मन में आय है।
कैसी सुहावशनी वस्तु हो, ना लोभ मन उपजाय है॥
है वस्तु सच्ची कौन सी, किस वस्तु मांहीं सार है?
उस वस्तु की हो खोज, उसका ज्ञान में अधिकार है॥

(३)

सब भांति का सामर्थ्य है, अरु प्राप्त सब ही भोग हैं।
फिर भी न रुचते भोग हैं, मालूम होते रोग हैं॥
ब्रह्मादि का ऐश्वर्य भी, जिसके लिये खर भार है।
जो चाहता बस मोक्ष, उसका ज्ञान में अधिकार है।

(४)

मन खिन्न रहता है सदा, रुचता जिसे ना भोग है।
ना अज्ञ ही ना तज्ञ ही, शिव से हुआ ना योग है॥
मन शान्त होने का किया करता सदा व्यापार है।
फिर भी न मन हो शान्त, उसका ज्ञान में अधिकार है॥

(५)

रुचता न भोजन है जिसे, मन मार फिर भी खाय है।
चलना नहीं है चाहता, हो खिन्न फिर भी जाय है॥
धन, धाम, सुत ना चाहता, रुचता नहीं परिवार है।
सत्तत्त्व की है खोज, उसका ज्ञान में अधिकार है॥

(६)

संसार दीखे दुःखमय, सुख का नहीं पाता पता।
सुख है कहां इस सोच में, निद्रा हुई है लापता॥
मल्लाह बिनु ज्यों नाव, चक्कर खा रही मझधार है।
'त्यों बुद्धि व्याकुल होय,' उसका ज्ञान में अधिकार है॥

(७)

हैं वेद चारों पढ़ लिये, वेदांङ्ग भी हैं पढ़ लिये।
सब शास्त्र पढ़ कर अर्थ उनके चित्त में हैं धर लिये॥
अब तक कहीं भी बुद्धि ने, पाया नहीं आधार है।
जाना नहीं है वेद्य, उसका ज्ञान में अधिकार है॥

(८)

जाना सगुण है ब्रह्म, पर निर्गुण अभी जाना नहीं।
'यह दृश्य कैसे दीखता,' यह भेद पहिचाना नहीं॥
की अर्थ की है भावना, बहु दिन जपा ओंकार है।
भोला ! हुआ मन शुद्ध, उसका ज्ञान में अधिकार है॥

मिथ्या न यह संसार है !

(१)

ना जानता है सत्-असत्, ना आत्म ही है जानता।
अपनी बताता देह, या मैं देह हूँ यह मानता॥
लड़ना, झगड़ना, नींद, भय, या जानता आहार है।
खर तुल्य उस नर के लिये, मिथ्या न यह संसार है॥

(२)

यह लोक सच्चा जानता, पर-लोक नाहीं मानता।
ना शास्त्र ही, ना धर्म ही, ना ईश ही पहिचानता॥
खाने कमाने के सिवा, करता न कुछ व्यापार है।
उस नित्य यम के ग्रास को, मिथ्या न यह संसार है॥

(३)

सुत, दार में, परिवार में, धन-धाम में आसक्त है।
मन में हजारों कामनायें, चित्त विषयासक्त है॥
मल-मूत्रमय इस देह का, करता सदा शृङ्गार है।
उस देहारागी मूढ़ को, मिथ्या न यह संसार है॥

(४)

यज्ञादि कर शुभ कर्म, जो नर स्वर्ग मांही जाय है।
कुछ काल करके भोग तहं, इस लोक में फिर आय है॥
ऊंचा चढ़े, नीचा गिरे, होता न भव से पार है।
उस मूढ़ कर्मठ के लिये, मिथ्या न यह संसार है॥

(५)

जो पुरुष करता योग सो अणिमादि पाता सिद्धियां।
चाहे जहां फिरता फिरे, है प्राप्त करता ऋद्धियां॥
छोटा बने मोटा बने, उतरे न तन का भार है।
ईश्वर विमुख उसके लिये, मिथ्या न यह संसार है॥

(६)

इन्द्रादि या ब्रह्मादिकों को, जो उपासक ध्याय है।
इन्द्रादि या ब्रह्मादि हो, बहुकाल तक सुख पाय है॥
जब पुण्य होता क्षीण, पाता देह मल भण्डार है।
गुण तीन से संयुक्त को, मिथ्या न यह संसार है॥

(७)

संसार से मुख मोड़ कर, जो जाय सद्गुरु की शरण।
सुनता वहां वेदान्त है, करता उसी का है मनन॥
सो धीर जाता है समझ, संसार यह निस्सार है।
निस्सार भी उसके लिये, मिथ्या न यह संसार है॥

(८)

निर्बीज होवें वासनायें, होय मन निर्वासना।
तब शेष रहता ब्रह्म, जिस में विश्व का है लेश ना॥
अद्वैत केवल सत्य है, निर्दोष सम शिव सार है।
भोला! नहीं वाणी न मन, मिथ्या तहां संसार है॥

वेदान्त पढ़कर क्या लिया ?

(१)

त्यागी न भोजन लालसा, लाखों भरी मन कामना ।
तृष्णा मरी छूटी नहीं, चाहता जगत में नामना ॥
स्वाधीन नाहीं इन्द्रियां, मन भी नहीं वश में किया ।
साधन किया ना एक भी, वेदान्त पढ़कर क्या लिया ॥

(२)

रूखा न भोजन भाय है, सूखा न खाया जाय है ।
मीठा, सलौना, देखकर, मुख मांहि जल भर आय है ॥
स्वादिष्ट भोजन मिल गया, तो पेट भर इतना लिया ।
ना जाय बैठा ना चला, वेदान्त पढ़कर क्या लिया ?

(३)

सुत-दार की, परिवार की, ऐश्वर्य की, धन-धाम की ।
स्वामित्त्व की, भूपत्त्व की, अति चाह है आराम की ॥
छोटे बड़े जन के रिझाने मांहि आयुष खो दिया ।
सीखी नहीं निष्कामता, वेदान्त पढ़कर क्या लिया ?

(४)

विख्यात हूं मैं देश माँही, जाति मांहि मान्य हूँ ।
पाऊं प्रतिष्ठा राज्य मांही, सर्व से सन्मान्य हूँ ॥
सन्मान पाने के लिये धन-मत्त-जन पूजा किया ।
कुल-धर्म भी पाला नहीं, वेदान्त पढ़कर क्या लिया ?

(५)

सुनकर प्रशंसा आपकी, तू फूल तन में जाय है।
निन्दा सुने है जब कभी, तो खिन्न मन हो जाय है॥
शीतोष्ण सहने का नहीं, अभ्यास तू ने है किया।
सुख दुःख सह सकता नहीं, वेदान्त पढ़कर क्या लिया ?

(६)

चिन्ता नहीं तेरी गयी, ना शोक भय तेरा गया।
ना मूढ़ता तेरी गयी, 'मैं और मेरा' ना गया॥
त्यागा न दुर्जन संग, नांही संग सन्तों का किया।
आसक्ति तन की ना गयी, वेदान्त पढ़कर क्या लिया ?

(७)

ना जानता है सत्, असत् आत्मा अनात्मा भी नहीं।
ममता नहीं त्यागी अभी, त्यागी अहंता भी नहीं॥
अभिमान विष पीता रहा, शम-दम सुधा नाहीं पिया।
श्रद्धा नहीं गुरु वाक्य में, वेदान्त पढ़कर क्या लिया ?

(८)

भोला ! श्रवण कर मनन कर, फिर ध्यान घर तू आत्म का।
सब विश्व भर को भूल जा, साक्षात् कर तू आत्म का॥
यदि जान लीन्हा आत्म को, वेदान्त सम्यक पढ़ लिया।
जाना नहीं यदि आत्म तो, वेदान्त पढ़कर क्या लिया ?

* ॐ *

सब कुछ जीवन को व्यौहार ।
मात पिता भाई सुत बांधव अरु पुनि गृह की नार ॥
तनतें प्रान होत जब न्यारे टेरत प्रेम पुकार ।
आध घरी कोऊ नहिं राखै घर तें देत निकार ॥
मृग-तृस्ना ज्यों जग रचना यह देखो हृदै विचार ।
कहु 'नानक' भजु राम नांम नित जाते होत उधार ॥

'काहे रे' बन खोजन जाई ?
सर्व निवासी सदा अलेपा तो ही संग समाई ।
पुष्प मध्य ज्यों वास बसत है, मुकुर माँहि जस छाई,
तैसे ही हरि बसै निरन्तर, घट ही खोजै भाई ।
बाहर-भीतर एकै जानौ, यह गुरु ज्ञान बताई,
जन 'नानक' बिन आपा चीन्हें, मिटै न भ्रम की काई ।

केवल टाइटिल रूपवाणी प्रिन्टिंग हाउस, दरियागंज देहली में